विद्यापति गोष्ठी

रचयिता

डॉ० श्री सुकुमार सेन

अनुवादक

डॉ० श्री शैलेन्द्र मोहन झा

विद्यापति-गोष्ठी

विद्यापति-गोष्ठी

लेखक

डा० श्री सुकुमार सेन, एम० ए०; पी-एच०डी०

कलकत्ता विश्वविद्यालय

हिन्दी रूपकार

डा० श्री शैलेन्द्र मोहन झा, एम० ए०; पी-एच०डी०

(सी०एम० कालेज, दरभंगा)

बिहार विश्वविद्यालय

मिथिला रिसर्च सोसाइटी

के लिये

मिथिला प्रकाशन, लहेरियासराय

द्वारा प्रकाशित

● संस्करण : प्रथम हिन्दी संस्करण, १९६६ ई० ।

● प्रकाशक : मिथिला प्रकाशन, लहेरियासराय ।

● मूल्य : २.५० पैसे ।

● मुद्रक : श्री बिन्दा प्रसाद,
दरभंगा प्रेस कं० (प्रा०) लिमिटेड, दरभंगा ।

विद्या योगेन रक्ष्यते

मिथिला रिसर्च सोसाइटी

मिथिला रिसर्च सोसाइटी

लहेरियासराय, दरभंगा

Vijaydeo Jha
9470369195
vijaydeojha@gmail.com
Book Source- Dr. Ramdeo Jha

वक्तव्य

विद्यापति-गोष्ठी, मिथिला रिसर्च सोसाइटी द्वारा प्रस्तुत दूसरा ग्रन्थ है। 'रिसर्च सोसाइटी' ने मिथिला एवं मैथिली साहित्य विषयक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों को प्रकाश में लाने की जो योजना बनायी है, यह ग्रन्थ उसीके अन्तर्गत है। इस क्रम का पहला ग्रन्थ प्रो० श्री रामदेव झा रचित 'नन्दीपति–गीतिमाला' है। मिथिला प्रकाशन, लहेरियासराय के स्वत्वाधिकारी पं० श्री सूर्य-नारायण झा ने इसे प्रकाशित कर उक्त योजना मे गति दी है अतः 'रिसर्च सोसाइटी' की ओर से हम उनके प्रति आभार प्रकट करते हैं, साथ ही मिथिला प्रकाशन के कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री रमानाथ मिश्र 'मिहिर' एवं दरभङ्गा प्रेस कम्पनी लिमिटेड के अधीक्षक एवं अन्य कर्मचारियों के प्रति, ग्रन्थ प्रकाशन में उनके सक्रिय सह-योग के लिये कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं।

सचिव

लहेरियासराय (दरभंगा) मिथिला रिसर्च सोसाइटी

निवेदन

'विद्यापति-गोष्ठी' विद्यापति विषयक गवेषणा एवं आलोचना का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके रचयिता डा० श्री सुकुमार सेन, अपने पाण्डित्य के लिये देश-विदेश में तो ख्यात हैं ही, विद्यापति-साहित्य के भी मर्मज्ञ विद्वान हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में इन्होंने विद्यापति एवं तद्‌युगीन साहित्यिक गति-विधि के प्रसंग में बहुत सारे तथ्यों एवं समस्याओं पर विचार किया है। फिर भी, ग्रन्थ को अनावश्यक विस्तार न देकर उन्होंने जो राशि-राशि सामग्रियाँ एकत्र कर दी है, वह इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। पुस्तक का प्रकाशन, इसके मूल रूप बंगला में, वर्षों पहले हुआ था। अब इसके हिन्दी रूपान्तर से विद्यापति-साहित्य का यह अमूल्य अनु-शीलन अधिकाधिक पाठकों के लिये सुलभ हो जायगा, ऐसी आशा है।

इस ग्रन्थ को रूपान्तरित करने एवं उसे प्रकाशित कराने की जो स्वीकृति लेखक महोदय ने प्रदान की है, उसके लिये प्रस्तुत लेखक उनका अनुगृहीत है। डा० सेन की इस अनुकम्पा को उपलब्ध कराने का सारा श्रेय कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के विद्वान

मित्र प्रो० प्रबोधनारायण सिंह को है। उनके साथ-साथ श्रद्धेय एवं स्नेही बन्धु प्रो० धर्मप्रियलाल, प्रो० सुरेन्द्र झा 'सुमन', प्रो० सन्तोष कुमार पाल, प्रो० पंकज कुमार मजुमदार, प्रो० नवीनचन्द्र मिश्र प्रो० शंकरानन्द पालित, प्रो० नीलमणि मुखर्जी, प्रो० रामदेव झा, प्रो० प्रेमशंकर सिंह एवं श्री वेदनाथ झा के प्रति प्रस्तुत लेखक हार्दिक आभार प्रकट करता है जिनसे इस अनुवाद कार्य में अमूल्य सहयोग एवं प्रोत्साहन मिला है।

मैथिली विभाग
सी० एम० कालेज दरभङ्गा
अप्रिल १९६६

विनयावनत
श्री शैलेन्द्रमोहन झा

✻ सूची ✻

भूमिका

तेरहवीं शताब्दी से लेकर सतरहवीं शताब्दी तक, प्रायः पाँच सौ वर्षों की अवधि मे मिथिला-मोरंग एवं नेपाल के राजाश्रय में जिस साहित्य की सृष्टि हुई थी, विद्यापति-रहस्य के ग्रन्थिमोचन के लिये यहाँ मैंने उसके धारावाहिक इतिहास को देने की चेष्टा की है। साथ ही मैंने बंगाल के साथ इन समस्त देशों का जो घनिष्ठ सम्बन्ध सूत्र था उसे भी व्यक्त करने का प्रयास किया है। इसी क्रम में मैंने, पूर्वीय भारत के इन प्रान्तों के तेरहवीं शताब्दी के अल्पज्ञात इतिहास के किसी-किसी विषय की आलोचना भी की है। गीति त्रिशतिका अंश में मिथिला-मोरंग एवं नेपाल मे लिखी गयी मैथिली एवं ब्रजबुलि की कविताओं का यथासम्भव मूल रूप दिया है। ये सारी कवितायें गतानु-गतिक परम्परा की नहीं है।

मुसलमानों के आधिपत्य होने के पहले पूर्वीय भारत के इन प्रान्तों की संस्कृति एवं भाषा एक जैसी थी। तेरहवीं शताब्दी के बाद भी बहुत दिनों तक मिथिला-मोरंग एवं नेपाल, बृहत्तर बंगाल के बाहर नहीं थे। नेपाल के पार्वत्य नीड़ में सुरक्षित रह कर ही प्राचीन बंगला साहित्य एवं संस्कृति की मंजूषा ध्वंश के हाथों से बच पायी है। बंगला की सबसे प्राचीन पुस्तकें—इतनी प्राचीन पुस्तकें भारत में अन्यत्र कहीं नहीं पायी गयी हैं—नेपाल में ही थीं एवं कई अभी भी हैं। इस प्रकार

की दो पुस्तकों की प्रतिलिपि उपलब्ध हैं। ये दोनों अभी केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में हैं एवं आशा की जाती है कि स्वाधीन भारत को शीघ्र ही लौटा दी जायगीं।

पहली प्रतिलिपि प्रज्ञापारमित पोथी की है। यह पुस्तक ११ वीं सदी के शुरू में महीपालदेव के राज्यकाल के पाचवें वर्ष में, किसी प्रवरमहायानयायी शाक्यभिक्षुक के व्यवहार के लिये लिखी गयी थी। पुस्तक की प्रतिलिपि करने का व्यवभार बहुभूति की कन्या लडाका ने बहन किया था। लिखे जाने के बाद भी बहुत दिनों तक पुस्तक बंगाल में ही थी क्योंकि बीच-बीच में, हाशिये में बाद की लिखी टिप्पणियाँ हैं। यह बात बेन्डेल ने बतायी है। जान पड़ता है कि मुसलमानों की चढ़ाई के समय यह बहुमूल्य सचित्र पुस्तक नेपाल पहुँची। उस काल के भिक्षु–सन्यासी–कवि–पण्डितगण, प्राण तो सहज ही दे सकते थे, परन्तु प्राण रहते पुस्तक को नष्ट नहीं होने दे सकते थे। १७ वीं शताब्दी के एक कवि देओल–देहारा, ध्वंश का वर्णन करते कहते हैं—"पूथि हाथे करया कत देय सि पलाय"।

दूसरी प्रतिलिपि जिस पुस्तक की है वह १२ वीं शताब्दी के एकदम अन्त में भग्नावशेष पाल साम्राज्य के अन्तिम उत्तराधिकारी, मगध के राजा गोविन्दपालदेव के राज्यकाल के अड़तीसवें वर्ष में, लिखी गयी थी। पुस्तक जब लिखी गयी थी तो गोविन्दपालदेव राज्यभ्रष्ट थे अथच् अन्य किसी ने एक-छत्र होकर राज्यसिंहासन पर अधिकार नहीं किया था। इसके विषय में लिपिकार, कायस्थ श्री गयाकर, लिखते हैं—श्रीमद्गोविन्दपालदेवाना विनष्टराज्ये अष्ठत्रिंशत् संवत्सरे अभिलिख्य–

मानः" । खास बंगाल में उस समय वृद्ध लक्ष्मणसेन का राज्यकाल चल रहा था । उस समय जयदेव जीवित रहे होंगे । उनके श्री गीतगोविन्द की मूलपोथी के प्राप्त होने से उसमें इसी प्रकार हाथ से लिखा देखने को मिलेगा । आधुनिक बंगाक्षर का रूप उसी समय में प्रस्फुटित हो रहा था ।

इसके साथ ही गयाकर द्वारा उतारी गयी और भी दो पुस्तकें पायी हैं, एक है एक वर्ष पहले की लिखी तो दूसरी एक वर्ष बाद की । अन्तिम पुस्तक पंडिताचार्य श्रीकान्हपादरचित 'योगरत्नमाला' है जो हेवज्रतंत्र की टीका है ।

गयाकर की परम्परा मगध में बहुत दिनों तक चली थी । इनके अढ़ाई सौ वर्ष के बाद भी एक और बंगाली कायस्थ सुनिपुण लिपिकार एवं चित्रशिल्पी का सन्धान पाते हैं । ये मगध के झाड़ग्राम के पत्तनिदार ("मगधदेशीयझाड़ग्राम–सासनिक") एवं केरकी ग्राम के वासी करण-कायस्थ श्री जयरामदत्त थे । इन्होंने प्रवर महायानयायी श्रीमत् शाक्य–भिक्षु ज्ञानश्री के लिये कालचक्रतंत्र की एक सचित्र पोथी की प्रतिलिपि की थी एवं उसे चित्रित किया था ।

मिथिला के अन्तिम अवहट्ठ कवि विद्यापति नहीं हैं । इनके प्रायः अढ़ाई सौ–तीन सौ वर्षों के पश्चात् भी एक मैथिल कवि द्वारा लिखित एक अवहट्ठ पद प्राप्त है । ये हैं आनन्दविजय नाटिका के लेखक सरसराम । नाटक के उपक्रम मे अवहट्ठ छन्द में कवि के आश्रयदाता का वंश परिचय है । विकृत पाठ का यथासम्भव परिष्कार कर उसे यहाँ उद्धृत किया जाता है—

तक्क-पङ्क्‌अ-अक्कर-अकत्तअरो (?) सुइ-पिएडओ
तीअ सिस्स महेस लक्खणावेश-आणइ मरिडओ।
जीअ जुत्ति-बखान सम्महुपाण बट्टिअ दप्पआ
बीसमेइ समत्थ परिडअ-सत्थ मानस-छप्पआ।
तीअ पुत्त कइत्तकम्म – सुहासमुद्द – [वरो]
सहु – तीरहुति – समत्थभूव – वेरिपक्ख-भयंकरो।
तींअ सुत्त पुरिसोक्षमो सो अहोरखानि लुट्टिआ
सग्ग-मत्त पआलहिअअं जीअ कित्ति तरङ्गिआ।
दुवीअ पुत्त नराअणो णरणाह-लक्खण-लक्खिओ
जीअ कम्म विपक्ख-लाअ वि नेत-नीर न सुक्खिओ।
तीअ सोअर राम-भूपइ दान करण-णरेसरा
दुवीअ सोअर श्याम-परिडअ कम्म धम्मिअ-सेहरा।
धम्म कम्म गरिट्ठ तीअ कनिट्ठ सुन्दर-सुवई
जीअ रुअ-विलास-तन्ति-समुद्द मज्जइ जुब्बई।
जत्थ सुरताण [सव्व-कज्ज-भार] समप्पिअ सत्थआ
जेन साहिअ अएण तिएण राएलाइं अद्धआ॥

एकतो अपरिचित रचना है फिर अनभिज्ञ द्वारा लिपिबद्ध किया गया है। तब पाठ का जितना ही उद्धार किया जा सका है उसीसे काम चल जायगा।

विद्यापति-गोष्ठी

१

प्रायः पाँच सौ वर्षों से बंगाली वैष्णव, चण्डीदास-विद्यापति को एक साथ स्मरण करते आये हैं। वैष्णव परिवार के लोग भले ही पहले से जानते हों, पर साधारण शिक्षित बंगालियों के लिये वैष्णव गीति काव्य का भाण्डार, गत शताब्दी के मध्य में आकर उद्घाटित हुआ। इस माध्यम से विद्यापति के साथ अंग्रेजी शिक्षित-बंगालियों का प्रथम परिचय हुआ। इस परिचय के दूत राजेन्द्रलाल मित्र हुये। १८५८-५९ ई० में विविधार्थ संग्रह में उनका एक छोटासा प्रबन्ध, 'बंग भाषा की उत्पत्ति' के नामसे प्रकाशित हुआ था। उसमें वैष्णव कवियों की आलोचना के प्रसंग विद्यापति की भनिता से एक पद उद्धृत हुआ था। तत्पश्चात् विद्यापति का उल्लेख एवं उनके एकाध उद्धृत पदों का दर्शन हरिमोहन मुखोपाध्याय कृत कविचरित (१८६९ ई०), महेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय रचित बंगभाषा का इतिहास (१८७१ ई०), बालक रवीन्द्रनाथ के स्कूल-शिक्षक एवं उनकी काव्यचर्चा के अन्यतम प्रथम परिपोषक, नार्मल स्कूल के पदार्थविद्या के अध्यापक महेन्द्रनाथ भट्टाचार्य के बांगला साहित्य-संग्रह (१८७२ ई०) एवं रामगति न्यायरत्न रचित बांगला भाषा ओ साहित्य विषयक प्रस्ताव (१८७२–७३ ई०) में होता है। इनके पश्चात् उल्लेख योग्य हैं जगतबन्धु भद्र की महाजन पदावली (१८७४–७५ ई०), अक्षयचन्द्र सरकार का प्राचीन काव्य संग्रह (१२८५) एवं

शारदा चरण मित्र की विद्यापति-पदावली (१२८५)। इन सबोंने यह मान लिया है कि विद्यापति बंगाली कवि थे।

विद्यापति बंगाली कवि थे, इस कथन के प्रति संशय का प्रथम उदय 'इण्डियन एन्टीक्वेरी' पत्रिका (१८७३ ई०) में प्रकाशित जानबिम्स के एक प्रबन्ध से हुआ। तत्पश्चात् बंगदर्शन (ज्येष्ठ १२८५) में राजकृष्ण मुखोपाध्याय का प्रबन्ध जिसमें उन्होंने अपना नाम प्रकाश नहीं किया था, विद्यापति बाहर हुआ। बंगला-साहित्य की आलोचना में यथार्थ प्रत्न गवेषणा, पहलीबार इस पुस्तक में परिलक्षित हुई। मिथिला जाकर, अनुसन्धान कर विद्यापति संबंधी जिन सारे तथ्यों को राजकृष्ण ने प्रकाशित किया, प्रस्तुत प्रबन्ध तक उनके अनुवर्तियों ने अवश्य ही स्वीकार किया है। ग्रीयर्सन ने अपनी मैथिली क्रेस्टोमैथी (१८८२ ई०) में तथा अपने प्रबन्ध (इण्डियन एन्टीक्वेरी—१८८५, १८९९) में राजकृष्ण द्वारा दिये गये परिचय का ही अनुसरण किया है। राजकृष्ण ने इसे जना दिया कि मिथिला में विद्यापति के नाम से ऐसे भी पद प्रचलित हैं जो बंगाल में नहीं पाये जाते।

इस प्रकार के अनेक पदों को ग्रीयर्सन ने क्रेस्टोमैथी में प्रकाशित किया। इस पदसमूह को लेकर एवं पदकल्पतरु-पदामृतसमुद्र-कीर्त्तनामृत प्रभृति पद सग्रहों से ब्रजबुलि के चुने पदों को एकत्रित कर नगेन्द्रनाथ गुप्त ने विद्यापत्ति पदावली (१३१६) का संकलन किया। इसका प्रकाशन शारदाचरण मित्र के संकलन का नये संस्करण के रूप में हुआ। नगेन्द्र नाथ गुप्त ने यदि केवल विद्यापति की भनिता से युक्त पदों का संकलन किया होता तो बोलने की कोई बात नहीं थी। पर बिना विचार किये

उन्होंने कविरंजन-कविवल्लभ इत्यादि की भनिताओं से, अच्छे-अच्छे पदों को विद्यापति के पद के रूप में प्रचलित कर, समस्या की जटिलता को बढ़ा दिया है। नगेन्द्रनाथ गुप्त के संकलन के बाद उनके कार्य को अमूल्यचरण विद्याभूषण ने अपने हाथों में लिया। वे (एवं उनके सहयोगी श्रीयुक्त खगेन्द्रनाथ मित्र) नगेन्द्रनाथ की संकलन पद्धति पर संशय प्रकाश कर ही संतुष्ट हो गये, उन्हें विलग करने की दिशा में अधिक दूर तक अग्रसर होने का साहस नहीं किया।

विद्यापति के कालनिर्णय के प्रसंग, नगेन्द्रनाथ (एवं उनके अनुवर्ती-गण), राजकृष्ण-ग्रीयर्सन से विशेष कुछ नहीं कह सके। इसके अतिरिक्त अर्वाचीन पाठ एवं अमूलक जनश्रुति पर विश्वास कर, वे विद्यापति को असम्भावित रूप से दीर्घजीवी अनुमान करने को बाध्य हुये हैं। इस गलती को हरप्रसाद शास्त्री ने लक्ष्य किया था। कीर्तिलता की भूमिका में वह द्रष्टव्य है। किन्तु वे भी प्रमाणों की सत्यता की परीक्षा न कर नगेन्द्रनाथ गुप्त के स्वर में स्वर मिला गये हैं। विद्यापति के कालनिर्णय में हरप्रसाद ने अपने संगृहीत तथ्यों—जिसका प्रयोग मैंने इस आलोचना कार्य में किया है—का व्यवहार नहीं किया है। इसके अतिरिक्त बंगाली विद्यापति का अस्तित्व भी उपेक्षित हो गया है, यद्यपि बहुत समय पहले (१९०५) शौरीन्द्रमोहन गुप्त ने इस कवि के प्रति शिक्षित समाज का ध्यान आकृष्ट करने की चेष्टा की थी।

सत्तरहवीं-अठारहवीं सदी के सन्धिकाल के पहले मिथिलामें लिखी किसी बही या पोथी में विद्यापति की कविता का उल्लेख नहीं है। बंगाल में चण्डीदास की भी प्रायः यही दशा है। दोनों कवियों में और भी एक समानता है। चण्डीदास की ही भाँति एकाधिक विद्यापति का अस्तित्व स्वीकार अपरिहार्य हो गया है।

———

२

वृहस्पति, वाचस्पति इत्यादि की तरह विद्यापति शब्द भी अति प्राचीन है, यद्यपि यह वैदिक एवं क्लासिकल संस्कृत साहित्य में नहीं मिलता है। शब्द तो वैदिक शब्दों से भी प्राचीन है, क्योंकि यह प्राचीन ईरानी भाषा में पाया गया है। अवेस्ता में सोमदेवता को सम्बोधन कर "वएद्यापइते" (अर्थात् विद्यापते) कहा गया है। अर्वाचीन संस्कृत में विद्यापति का प्रथम उल्लेख कवि के नाम के रूप में हुआ है। आश्चर्य का विषय यह है कि—विद्यापति नामक कवि मिथिला के साथ कभीभी सम्पर्क शून्य नहीं थे। एक तो कर्णदेव के सभाकवि थे। इनके द्वारा लिखित पाँच श्लोक सदुक्ति कर्णामृत में संकलित हैं। ११ वीं शताब्दी में कर्णदेव एवं उनके पिता गाङ्गेयदेव[1] ने तीरभुक्ति एवं पश्चिम बंगाल के बीच राज्य विस्तार किया था। वीरभूमि के सीमान्त पर, पाइकोर में कर्णदेव का एक छोटा प्राचीन लेख पाया गया है।

मैथिल कवि द्वितीय विद्यापति ही असल अर्थात् सुप्रसिद्ध विद्यापति हैं। विद्यापति कहने से सबों को इन्हींका बोध होता है। इनके पश्चात्

---

१. १०७६ संवत में "महाराजाधिराज-पुण्यावलोक-सोमवंशोद्भव-गरुड़ध्वज-श्रीमद् गाङ्गेयदेव-भुज्यमान-तीरभुक्तौ कल्याणविजयराज्ये" "कायस्थपण्डित" श्री गोपति ने "नेपालदेशीय" श्री आनन्द के लिये रामायण की पोथी लिखी थी।

भी विद्यापति के नाम से या उपाधि से, बंगाल एवं मिथिला में एकाधिक कवि हुये। सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, श्रीखण्ड में एक कवि ने विद्यापति की भनिता से पद लिखकर ख्याति अर्जित की थी। विद्यापति की भनिता से, बंगाल में बहुसंख्यक शृंगारिक पद प्राप्त हुये हैं। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में, एक बंगाली कवि विद्यापति ने सत्यनारायण विषयक पांचाली काव्य की रचना की थी। ग्रीयर्सन के संग्रह में मैथिल कवि जयराम के दो पद हैं।[1] भनिता में कवि के नाम के साथ विद्यापति का विरुद है, "भनहि विद्यापति कवि जयराम"।

बंगाल में जिस प्रकार नरहरि-ज्ञानदास-लोचन इत्यादि के अच्छे-अच्छे पद परवर्त्तीकाल के कित्तनियों के मुख से एवं लिपिकारों की कलम से "कहे चण्डीदास" की छाप पाते आये हैं, उसी प्रकार मिथिला में भी अनेक पद "भनइ विद्यापति" की छाप लेकर हमारे पास तक पहुँचे हैं। बंगाल के बैष्णव समाज में जयदेव–पद्मावती के दृष्टान्त पर तथा चण्डीदास एवं रामी के आदर्श पर प्रायः ३–४ शताब्दी पूर्व, विद्यापति-लखिमा की रोमान्टिक प्रणय कथा गढ़ी गयी थी। जब कृष्णदास कविराज ने लिखा कि श्री चैतन्य "चण्डीदास विद्यापति-रायेर-नाटक-गीति" को सुनकर प्रेम से तन्मय हो जाते हैं तो इसे सुनकर सहजपंथी वैष्णव साधकों ने अनायास ही विद्यापति को अपने मत का एक सिद्धाचार्य बना लिया।

कत्रि साधक समाज के बाहर भी एक व्यक्ति बंगाली विद्यापति थे। इन्होंने "वैद्य रहस्य"[2] के नाम से एक चिकित्सा ग्रन्थ की रचना की थी (१६६१)। इस विद्यापति के पिता का नाम वंशीधर था।

---

१. एक पद का रूपान्तर, भोलझा द्वारा संकलित मिथिलागीत संग्रह के प्रथम भाग में है। उसे नवीन पद समझकर अमूल्य चरण विद्याभूषण ने विद्यापति के अन्तर्गत स्थान दिया है (७८३)।

२. मित्र १४८०।

३

विद्यापति का जीवनकाल निर्धारण में सर्वप्रथम उनके पोषक राजा-जमीन्दारों का शासन-काल स्थिर करना आवश्यक है। "महामहोपाध्याय सत्ठक्कुर" श्रीविद्यापति ने कामेश्वर राजपण्डित के एकाधिक वंशधरों की सभा को अलंकृत किया था। इनके समय एवं पौर्वापर्य प्रधानतः विद्यापति की संस्कृत एवं प्राकृत (अवहट्ठ) रचनाओं पर निर्भर करते हैं। अतएव विद्यापति के रचना स्रोत का अनुसरण किया जाय।

कर्णाटवंशीय हरसिंहदेव (वा हरिसिंहदेव) मिथिला के अन्तिम स्वाधीन भूपति थे। इनकी राजधानी सिमराँवगढ़ में थी। बंगाल के, मुसलमान शक्ति की क्रीड़ाभूमि में परिणत हो जाने के सौ साल बाद भी जिस राजवंशने पूर्वभारत के बृहत्तम भूखण्ड में हिन्दुओं की स्वाधीनता को अक्षुण्ण रखा था, उसके श्रेष्ठ पुरुष थे ये अन्तिम राजा। इस दृष्टि से इनकी समता सेनवंश के चूड़ामणि लक्ष्मणसेन से की जा सकती है। लक्ष्मणसेन के सदृश ही हरसिंहदेव भी काव्यगीतिरस के मर्मज्ञ थे। विद्यापति रचित पुरुषपरीक्षा की एक कथा में हरसिंहदेव के संगीत कला-ज्ञान का सश्रद्ध उल्लेख है। उसकाल में, उत्तरापथ के, ये श्रेष्ठ हिन्दू राजा थे, इसीसे कविगण इन्हें "हिन्दूपति" कहकर अभिनन्दित कर गये हैं। दिल्ली के सुलतान गियासुद्दीन के साथ हुये अन्तिम संघर्ष (१३२३–२४) में पराजय के परिणामस्वरूप, तीरभुक्ति हरसिंहदेव

के हाथ से चला गया। नेपाल की तराई में इनका वंश राज्य करता रहा। इनके साथ जो कवि पण्डित-गुणी थे, उन सबों ने एवं उनके वंशधरों ने नेपाल में भी प्रतिष्ठा पायी थी। हरसिंहदेव के वंश के साथ नेपाल राजवंश का सम्पर्क, विवाहसूत्र से घनिष्ठतर हो गया।

हरसिंहदेव के सान्धिविग्रहिक महामन्त्री महामहत्तक ठक्कुर चण्डेश्वर बड़े पण्डित थे। ये वंशानुक्रम में राजमन्त्री,—पिता महासन्धिविग्रहिक ठक्कुर वीरेश्वर, पितामह महासन्धिविग्रहिक ठक्कुर देवादित्य, पितृव्य महामहत्तक गणेश्वर (जिन्होंने 'सुगतिसोपान'[1] एवं 'दानपद्धति'[2] की रचना की थी), पितृव्यपुत्र महामहत्तक मन्त्री रामदत्त (जिन्होंने यजुर्वेदीय 'विवाहादिपद्धति'[3] की रचना की थी) थे। चण्डेश्वर द्वारा लिखे गये अथवा लिखाये गये अनेक स्मृति निबन्ध हैं। उस समय के ब्राह्मण-पण्डित राजमन्त्रीगण सेनाधिपत्य भी करते थे। चण्डेश्वर, एकाधिकबार हरसिंहदेव की विजयवाहिनी के नायक हुये थे। इनके प्रशस्तिकार कवि ने लिखा है—महामन्त्री रत्नाकर जब समर में अग्रसर होते हैं तब गज बल से चौंकक़र बंगसेना रणभंग कर देती है, कामरूप सेना विरूपित हो जाती है, चीन की सेना जंगल विलीन हो जाती है, लाट की सेना भाग खड़ी होती है, इत्यादि इत्यादि।

बंगाः संजातभङ्गाश्चकितकरिघटाः कामरूपा विरूपाश्चीना कुंजादिलीनाः प्रमुदित बिलसत् [किङ्किणीकाः किराताः]

---

१. लिपिकाल ल० सं० २२४ (=१३४३)।
२. ई २७१५।
३. लिपिकाल ल० सं० ४१४ (=१५३३)।

नेपालाद् भूमिपालाद् भुजवलदलितास्ते चलाटाश्च लाटाः
कर्णाटाः केन दृष्टाः प्रसरति समरे मन्त्रिरत्नाकरस्य ॥

हरसिंहदेव के राज्यकाल में ही महामन्त्री चण्डेश्वर राजा की ही तरह मर्यादा के अधिकारी हो गये थे। उनका परिचय "रस गुण भुज चन्द्रैः संमिते शाकवर्षे" (१३१४) बागमती के किनारे उनके तुलापुरुष-दान में पाते हैं। परवर्तीकाल में चण्डेश्वर की इस कीर्ति ने पण्डित समाज में, हरिसिंहदेव की ख्याति को भी आच्छादित कर दिया था।

चण्डेश्वर ने, अपने परिजनों को साथ ले, नेपाल तराई में हरसिंह-देव का अनुगमन किया था। उस समय उनके परिचितों में कोई-कोई देश में ही रह गये थे। उनमें से एक थे—राजपण्डित कामेश्वर जो हरसिंहदेव के एक सभासद थे। उन्होंने तीरभुक्ति में नवागत मुसलमान शक्ति के अनु-कूल बनकर तथा उनकी मातहती स्वीकार कर, हरसिंह के विनष्ट राज-वंश का कुछ अधिकार प्राप्त किया था। कामेश्वर के पुत्र भोगेश्वर (वा भोगेश), ने फ़िरोजशाह तुगलक के बंगाल अभियान में सहा-यता की थी फिर 'राउ' अर्थात् 'राय'[1] की उपाधि प्राप्तकर, कुछ हद तक अनौपचारिक रूप से राज्यसिंहासन लाभ किया था। तब वह सिंहासन स्वाधीन राजा का नहीं, वरन् सामन्त राजा अथवा जमीन्दार का था। विद्यापति ने कीर्तिलता में भोगेश्वर के सम्बन्ध में लिखा है कि प्रिय सखा शब्द से सम्बोधन कर फिरोज शाह ने उन्हें संवर्द्धित किया था, "प्रिय सख भणिअ पिरोजशाह सुरतान समानल"।

---

१. भोगेश्वर के पौत्रों ने 'राय' उपाधि को छोड़कर राजोचित 'सिंह' पदवी को धारण किया था।

भोगेश्वर के दो पुत्र थे, गणेश्वर (वा गणेश) एवं भवेश्वर (वा (भवेश)। कीर्त्तिलता के अनुसार भोगेश्वर की मृत्यु २५१ ल० सं० (=१३७०) में हुई।[1] पिता की मृत्यु के उपरान्त दोनों भाइयों ने राज्य का विभाजन कर लिया था अथवा नेपाल-मोरंग के प्रथानुसार दोनों भाई सम्मिलित रूप से अधिकार का उपभोग कर रहे थे, किंवा एकमात्र ज्येष्ठ भ्राता ही राज्याधिकारी हुये थे, सो स्पष्ट नहीं है। फिर परवर्त्ती राजागण जिस प्रकार से गणेश एवं उनके बच्चों की उपेक्षा करते आये हैं उससे जान पड़ता है कि भोगेश्वर की सम्पत्ति का बँटवारा हुआ था। भोगेश की मृत्यु के कुछ समय बाद ही, तीरभुक्ति के प्रादेशिक शासन-कर्त्ता तुर्की मालिक असलान के द्वारा गणेश का बध हुआ। गणेश के इस अपघात के मूल में शायद पारिवारिक षडयन्त्र था।

गणेश्वर के तीन पुत्र थे—राम सिंह, वीर सिंह एवं कीर्ति सिंह। कीर्तिलता के अनुसार वीर सिंह बड़े थे, कीर्ति सिंह छोटे थे।[2] कीर्तिलता में राम सिंह का नाम प्रसंग क्रम में आया है एवं उसका मुद्रित पाठ "राअ सिंह" है। किन्तु महाराजाधिराज रामसिंहदेव के राज्यकाल (१४४६ संवत् = १३९०) में लिखित "मिथिलामहीमहेन्द्र" नामक पुस्तक प्राप्त हुई है। इनकी राजसभा के एक सदस्य पण्डित श्रीकर ने अमरकोष की टीका लिखी थी। मलिक असलान के पश्चात पितृराज्य

1. तारीख में सन्देह करने का कारण है। कीर्त्तिलता के अध्ययन से मालूम होता है कि गणेश की मृत्यु के तुरत बाद ही कीर्त्तिसिंह जौनपुर के सुलतान इब्राहिम शर्की के शरणापन्न हुये थे। अथच् इब्राहिम का राज्यकाल होता है १४०१–४०।

२. ग ४७४१ ('शुद्धिकल्पतरु')

के उद्धार की कामना से बीरसिंह एवं कीर्तिसिंह, दोनों भाई जौनपुर के सुलतान इब्राहिम शर्की के पास गये। इब्राहिम ने इन्हें अपनी सेना के साथ कर लिया। मुँह खोलकर कुछ न बोल सकने के कारण ब्राह्मण सन्तान दोनों भाई "तुलुक संगे संचार परम कट्ठे आचार रक्खिअ" देश-विदेश घूमते हुये दुर्दशाग्रस्त होकर महाद्वन्द्व में पड़ गये। वे सोचने लगे, हमारी यह करुण-कथा जब माँ सुनेगी तो क्या वह जीती बचेगी ?

तंखणे चिन्तइ एक्कपइ कित्तिसिंह अरु राए
अम्मह एत्ता दुक्ख सुनि किमि जिऽवह मभु माए।

साथ ही साथ उन्होंने मन को समझाया, वहाँ विश्वस्त मन्त्री आनन्द खान एवं सुपवित्र मित्र हंसराज हैं, हमारे सहोदर श्री रामसिंह हैं, मन्त्री गोविन्ददत्त हैं, वीर हरदत्त है—ये सभी निश्चय ही माँ को धैर्य देकर रखेंगे।

तहाँ अच्छए मन्ति आनन्द - खान
जे सन्धि - भेद - बिग्गहो जान।
सुपवित्त - मित्तो सिरि - हंसराज
सरवस्स उपेक्खइ अम्ह काज।
सिरि अम्ह सहोदर रामसिंह
संगाम परक्कम रुट्ठ सिंह।
गुणे गरुअ मन्ति गोविन्ददत्त
तसु वंस - वड़ाइ कहओं कत्त।
हरक भगत हरदत्त नाम
संगाम - कम्म अज्जुन समान।

तसु परबोधे माए मभु हिअ न धरिज्जइ सोग
विपअ न आवइ आसु घर जसु अनुरत्त आ लाग।

जब असह्य हो गया, एक-एक कर साथी सब साथ छोड़ने लगे, तब कीर्तिसिंह एवं बीरसिंह साहस कर इब्राहिम के मन्त्रियों के पास गये। उनकी वाग्मिता से सुलतान को दया आयी और तिरहुत की ओर मुड़े। कीर्तिलता के अनुसार असलान के साथ कीर्तिसिंह का द्वन्द्वयुद्ध हुआ था। उसमें असलान की हार हुई और कीर्तिसिंह ने उसका प्राण न लेकर दया कर छोड़ दिया। यह युद्ध कथा अतिशयोक्ति पूर्ण प्रतीत होती है। सच तो यह है कि इब्राहिम की सेना के सामने असलान ने ठहरने का साहस ही नहीं किया। जो हो, दोनों भाइयों को पितृराज्य अर्पित कर इब्राहिम चला गया।

मिथिला में प्रचलित एक कहानी की तुलना इसके साथ की जा सकती है। इसमें नायक कीर्तिसिंह नहीं, शिवसिंह हैं। कर न देने के कारण हो अथवा अविनय का परिणाम हो, दिल्ली के बादशाह ने राजा को पकड़ लाने के लिये अपनी फौज तिरहुत भेज दी। शिवसिंह बन्दी बनाकर दिल्ली ले जाये गये। विद्यापति भी उनको छुड़ाने के लिये दिल्ली गये। बादशाह के पास जाकर विद्यापति ने कहा कि मैं अदृश्य विषयों का वर्णन कर सकता हूँ। परीक्षा के लिये विद्यापति को एक सन्दूक में बन्द कर दिया गया। काफी देर बाद उन्हें छोड़ दिया गया और कतिपय तरुणियों की ओर संकेत कर, उन्होंने इसके पहले क्या किया है उसका वर्णन करने को कहा गया। तरुणिओं ने इस बीच में यमुना में स्नान किया था। विद्यापति ने तत्काल ही कविता रच डाली,

"कामिनि करु असनाने" इत्यादि। बादशाह ने प्रसन्न होकर शिवसिंह को मुक्त कर दिया एवं विद्यापति को उनका निवासग्राम बिसपी जागीर में दिया। यह कहानी जनश्रुति मात्र है तथापि सर्वथा अमूलक नहीं हो सकती है। कीर्तिसिंह के पितामह भोगेश, फिरोजशाह के अनुगत थे सुतरां ऐसा मालूम होता है कि दिल्ली दरबार के साथ पहले से ही उनका सम्पर्क था। कीर्तिसिंह की कीर्ति, कीर्तिलता में प्रचुर पल्लवित हुई है, फिर भी इस विषय को समझते देर नहीं लगती कि दिल्ली अथवा जौनपुर के मुसलमान सुलतान के पास उन्हें यथेष्ठ कष्ट—सम्भवतः बन्दी जैसा जीवन—भोगना पड़ा था।

तब दिल्ली के बादशाह के पास विद्यापति के जागीर पाने की बात सर्वथा असत्य मालूम पड़ती है। असल में, किसीने भी विद्यापति को बिसपी ग्राम का दान, विधि के अनुसार लिख-पढ़ कर नहीं दिया था—न तो बादशाह ने न शिवसिंह ने। केवल विद्यापति के बड़े नाम के जोर से उनके अधस्तन पुरुष (?), विगत शताब्दी की मध्यावधि तक गाँव का अधिकारभोग करते आये थे। रेभन्यू सर्वे के कारण इस अधिकार में व्यवधान उपस्थित हुआ। तिरहुत में जब सर्वे हुआ तो बिसपी गाँव के जमीन्दारोंने अपना अधिकार प्रमाणित करने के लिये, शिवसिंह के नामका "शासन" वा भूमिदान ताम्रपट्ट दाखिल किया था। बादशाही फरमान देने से तो चल सकता था पर प्राचीन फारसी दस्तावेज तैयार करना और भी अधिक कठिन काम था। शिवसिंह द्वारा विद्यापति को प्रदत्त इस शासनपट्ट की कथा का प्रथम उल्लेख राजकृष्ण मुखोपाध्याय ने किया था। समस्त रूप में इसे ग्रीयर्सन ने प्रकाश में लाया (१८८५)। राज-

कृष्ण एवं ग्रीयर्सन दोनों ने इसे असली मान लिया था। किन्तु प्राचीन लेख विशेषज्ञ की दृष्टि में इसकी कृत्रिमता कम समय में ही पकड़ में आ गयी। शासन में लक्ष्मण संवत्,[1] विक्रम संवत्,[2] तथा शक संवत्[3] के साथ ही 'सन' अर्थात् फसली-हिजरी संवत्[4] का भी उल्लेख है, अथच् सन प्रायः दो सौ वर्ष पश्चात् अकबर द्वारा प्रवर्त्तित हुआ था। एक ढेले से चार चिड़ियों के शिकार की जगह चार ढेले से एक चिड़िया को मारने से और भी विपत्ति का सामना करना पड़ा। चारों तारीखों में कोई सामञ्जस्य नहीं है। इस दस्तावेज के जाली होने के और भी प्रमाण हैं। वह बड़ा ही मनोरंजक है।

सुना जाता है कि जिस साहेब के सामने यह दस्तावेज उपस्थित किया गया, उसने पण्डित को बुलाकर अनुवाद कराया था। शासन के अन्तिम श्लोक का अनुवाद सुनकर जैसा सुना जाता है, साहेब ने कहा था, हम न तो हिन्दू हैं न मुसलमान, गाय एवं सूअर दोनों ही हमारे भक्ष्य हैं; सुतरां सम्पत्ति को अधीनस्थ करने से मुझे शाप नहीं लगेगा। शासनपट्ट के बावजूद भी सम्पत्ति सरकार का खास हो गया। अनुवाद के दोष से साहेब ने गलत सोचा था। शाप का फल उसके ऊपर पड़ा था अथवा नहीं सो तो मालूम नहीं, पर शासन-रचयिता ने ईसाई साहबों को भी छोड़ा नहीं था। उनके प्रति बड़े ही कौशल से इंगित किया गया है,—हिन्दू एवं तुर्कको छोड़कर अन्य द्वारा भूमि पर अधिकार करने से वे आत्ममांस के साथ ही स्वधर्म को खायेगें (वा खोयेगें)। शासन-लेखक को यह बात अज्ञात नहीं थी कि साहबों के लिये एकमात्र अखाद्य मनुष्य का मांस है। श्लोक यह है,

---

१. २९३। २. १४५५। ३. १३२१। ४. ८७७।

ग्रामे गृह्णन्त्यमुस्मिन्‌ किमपि नृपतयो हिन्दवोऽन्ये तुरुष्का
गोकोलं स्वात्ममांसैः सहितमनुदिनं भुञ्जते स्वे स्वधर्मम्‌।
ये चनं ग्रामरत्नं नृपकररहितं पालयन्ति प्रतापै—
स्तेषां सत्कीर्त्तिगाथा दिशि-दिशि सुचिरं गीयतां वन्दिवृन्दैः॥

भाषा अत्यन्त दोषपूर्ण है। शिवसिंह की सभा में दिग्गज पंडितों का अभाव नहीं था। इस प्रकार की अग्राह्य रचना उनकी लेखनी से बाहर हो नहीं सकती। शासन-पट्ट जाली है एवं यह जाल हाल-साल में किया गया है।

विद्यापति की प्रथम पुस्तक 'कीर्त्तिलता'[1] है जो कीतिसिंह के जीवन-काल में ही लिखी जा चुकी थी। इसका बोध प्रत्येक पल्लव के पुष्पिका श्लोक से होता है। जैसे, "चिरमवतु महीं कीर्त्तिसिंहो नरेन्द्रः" "सदासफल साहसो जयति कीर्त्तिसिंहो नृपः" इत्यादि। अन्तिम श्लोक में कहा गया है कि श्री कीर्तिसिंह नृप की यह वीरता की कहानी अक्षय हो एवं विद्यापति की यह मधुरसनिष्यन्दी काव्य आकल्प स्थायी हो।

एवं सङ्गरसाहसप्रमथनप्रारब्ध लब्धोदयां
पुष्णातु[2] श्रियमाशशाङ्कतरणीं श्री कीर्तिसिंहो नृपः।
माधुर्यप्रसवस्थली गुरुयशोविस्तारशिक्षासखी,
यावद् विश्वमिदं च खेलनकवेर्विद्यापतेर्भारती॥

यहाँ 'खेलनकवि' की कथा समस्या उत्पन्न करती है? क्या 'खेलन' विद्यापति का वास्तविक नाम है अथवा वंश का नाम है? एवं इस प्रकार "कविशेखर" "कविकङ्कण" इत्यादि की तरह "विद्यापति" क्या मिथिला के राजकवि की उपाधि है? किन्तु "खेलनकवि" तो सुनमे में नाम जैसा

१. भातगाँव के राजा जगज्योतिमल्लदेव के आदेश से ७४७ नेपाली संवत में (=१६२७) दैवज्ञ नारायण सिंह द्वारा लिखित पोथी, हर प्रसाद शास्त्री द्वारा प्रकाशित (१३३१)।

२. मुद्रित पाठ "पुष्णाति"।

लगता नहीं है। आपाततः इस समस्या के समाधान का उपाय नहीं दिखाई देता है।

कीर्त्तिलता की भाषा अवहट्ठ अर्थात् अर्वाचीन अपभ्रंश है। अवहट्ठ का ही नामान्तर "लौकिक" अथवा "देशी" भाषा है। बंगला-हिन्दी-राजस्थानी मराठी प्रमुख प्रादेशिक भाषाओं के उद्भूत होने के बाद भी बहुत दिनों तक अर्वाचीन अपभ्रंश का वह साहित्यिक रूप जो उत्तरापथ के इस ओर बंगाल से उधर गुजरात तक लौकिक काव्य एवं ग्राम्यगीत के बाहनरूप में प्रचलित था उसीका नाम अवहट्ठ है। विभिन्न प्रादेशिक साहित्य का मूल, इस अवहट्ठ साहित्य में उपलब्ध है। समृद्ध संस्कृत साहित्य के विपुल रस भाण्डार की चाभी पाण्डित्य की गुफा में रखी थी। फिर पण्डितगण इस प्राकृत काव्य के रसिक नहीं थे। किन्तु "देशी" कविता पण्डित-मूर्ख, किसी के पास अश्पृश्य नहीं थी। इसीसे कीर्त्तिलता के उपक्रम में विद्यापति ने सफाई देते लिखा,

सक्कय-वाणी वुहअन भावइ
पाउअ-रस को मम्म न पावइ।
देसिल वअना सबजन-मिट्ठ।
तेँ तैसन जम्पओ अवहट्ठा॥

अर्थात्, संस्कृत भाषा विद्वान लोग समझते हैं, प्राकृत के रस मर्म को कोई नहीं पाता ; देशी बचन सबको मीठा लगता है ; इसीसे वैसा ही अवहट्ठ मैं लिखता हूँ।

कीर्त्तिलता विद्यापति की पहली रचना नहीं है। इसके लिखे जाने के पहले ही विद्यापति का (विद्यापति परम्परा का ?) कवियश सुप्रतिष्ठित

हो चुका था। ऐसा न होने से, इस कथन जैसा आत्मविश्वास वा साहस उन्हें नहीं होता, कि बालचन्द्र एवं विद्यापति-वाणी दोनों ही दुर्जनों के उपहास से बाहर है—बालचन्द्र हरसिर पर शोभित होता है और विद्यापति-वाणी विदग्ध जनों के मन को मुग्ध करती है।

बालचन्द विज्जावइ-भासा
दुहु नहि लग्गइ दुज्जन-हासा।
ओ परमेसर-हर-सिर सोहइ
ई निच्चइ नाअर-मन मोहइ।

बालचन्द्रमा के साथ अपनी कविकृति की तुलना करने से ऐसा अनुमान होता है कि उस समय विद्यापति तरुण वयश के थे। आज के विज्ञापन की भाषा में तब वे 'उदीयमान कवि' थे।

कीर्त्तिलता में जौनपुर शहर का मनोरंजक वर्णन है। शहर की समृद्धि के वर्णन में ग्रामीण, तीरभुक्ति के कवि पञ्चमुख हो गये हैं। इतिहास से भी ज्ञात है कि इब्राहिमशाह शर्की[1] के समय में जौनपुर की शोभा दिल्ली की प्रतिस्पर्द्धी हो गयी थी।

कीर्त्तिसिंह का राज्यकाल अधिक दिनों तक रहा, ऐसा मालूम नहीं होता। उनके मृत्यूपरान्त गणेश के पुत्रों द्वारा राज्य का कोई आभास नहीं मिलता है। मालूम पड़ता है कि उनका राज्य उनके पिता के चचेरे

१. शर्की उपाधि की कोई अच्छी व्याख्या नहीं हुई है। मेरा अनुमान है कि इन लोगों का उद्भव हिन्दूवंश से हुआ है, संभवतः ये पहाड़ी क्षत्रियवंशी हैं। धर्मगुप्त ने अपने रामायण-नाटक में पोषक श्रीमान जययुथसिंहदेव को "सुरकीकुलकमलकाननविकासनैकभास्कर" कहा है। यही "सुरकी" ही क्या शर्की हुआ है ?

भाई "गरुड़नारायण" देवसिंह के अधिकार में चला आया। शायद इसी कारण से कवि को कीर्त्तिसिंह की सभा से देवसिंह की सभा में पाते हैं।

देवसिंह के सभासद के रूप में विद्यापति ने 'भूपरिक्रमा'[1] की रचना की थी। प्राचीन ढंग पर, संस्कृत में लिखित इस पुस्तक में विभिन्न देशों के विभिन्न तीर्थों का वर्णन है। प्रसंगक्रम में नानाप्रकार के गल्प एवं कहानियाँ भी हैं। पुरुष-परीक्षा में विद्या पति ने, शिवसिंह के पिता देवसिंह की प्रशंसा में "सक्कुरीपुर-सरोवरकर्त्ता हेमहस्तिरथ दानविदग्धः" "रणजेता" कहा है। विद्यापति कबसे मैथिली में पद रचना करते हैं, सो नहीं कहा जा सकता। तब देवसिंह के पूर्ववर्ती किसी मैथिल राजाओं का उल्लेख विद्यापति की भणिताओं में नहीं पाया जाता है। दो-तीन पदों में हासिनिदेवी-पति गरुड़नारायण देवसिंह का उल्लेख है।

विद्यापति ने शिवसिंह का यश-गान 'कीर्तिपताका'[2] में किया है। कीर्तिलता की ही तरह यह भी अवहट्ठ में लिखित है। कीर्तिपताका के अन्तिम पुष्पिका श्लोक में कवि ने कहा है कि जिस प्रकार शिवसिंह की वीरत्व गाथा से प्रत्येक गृह-कोण मुखरित हुआ है उसी प्रकार विद्यापति की यह वाणी भी यावच्चन्द्र दिवाकर प्रत्येक व्यक्ति के मुखमें रहे।

एवं श्री शिवसिंह देव नृपतेः संग्रामजातं यशो
गायन्ति प्रतिपत्तनं प्रतिदिशं प्रत्यंगणं सुभ्रुवः।

---

१. संस्कृत कालेज की पोथी। लिपिकाल १५०७ (=१५४५ शकाब्द, १४५० संवत)।

२. नेपाल दरबार की पोथी। लिपिकाल ल० सं० ४२६ (=१५४५)।

एतत कीर्ति-[सुधाप्रसाधितरसा][1] वाणीच विद्यापते-
राचन्द्रार्कमिदं विराजतु मुखाम्भोजे[धन्या][1] सदा ॥

एक अवहट्ठ कविता में[2]–जो निश्चितरूपसे कीर्तिपताका से उद्धृत है—देवसिंह के परलोक गमन एवं शिवसिंह के राज्यलाभ का वर्णन है। यहाँ देवसिंह का मृत्युवर्ष लक्ष्मण संवत् (२६३) एवं विक्रम संवत् (१४०५) में दिया हुआ है। दोनों ही तिथियों में सात वर्ष का अन्तर है। लक्ष्मण संवत में भूल है, क्योंकि २६१ लक्ष्मण संवत् में शिवसिंह को राज्याधिकारी देखा जाता जाता है।

विद्यापति का द्वितीय संस्कृत ग्रन्थ 'पुरुषपरीक्षा'[3] है जो शिवसिंह के राज्यकाल में लिखा गया। रचना समाप्त होने के पहले ही राजा की मृत्यु हो गयी थी, ऐसा अन्तिम पुष्पिका श्लोक से मालूम होता है," "एवं महाराजाधिराज श्री शिवसिंहदेव युद्ध में सभी शत्रुओं पर जय प्राप्त कर, राज्य एवं सांसारिक उभय सुखोपभोग कर श्रीमन्महादेव के सम्मुख शरीर त्याग कर मुक्त हुये हैं।"[4] पुरुष-परीक्षा में अनेक अच्छी ऐतिहासिक-अनैतिहासिक गल्प कहानियाँ हैं। इस हिसाब से इसे भूपरिक्रमा का उपसंहार कहा जा सकता है। ऐसा जान पड़ता है कि एक समय में शिवसिंह को गौड़ सुलतान का पक्ष लेकर युद्ध में उतरना पड़ा था। इसलिये पुरुष-परीक्षा में विद्यापति कहते हैं,

---

१. लेखक द्वारा सन्निविष्ट।

२. सर्वप्रथम विनोदबिहारी काव्यतीर्थ ने साहित्य-परिषद् पत्रिका के सप्तम भाग (पृष्ठ ३०-३१) में प्रकाशित किया था।

३. मित्र १९२२। लिपिकाल ल० सं० ५०४ (=१६२३)।

४. हरप्रसाद राय के अनुवाद (१८१५) पर आधारित।

यो गौड़ेश्वर सज्जनेश्वर[1] रणक्षोणीषु लब्ध्वा यशो
दिक्कान्ताचय कुन्तलेषु नयते कुन्दस्रजायास्पदम् ।...

राजकृष्ण एवं ग्रीयर्सन के अनुसार, मैथिल पंजी के आधार पर देवसिंह का राज्यकाल सुदीर्घ इकसठ वर्षों तक तथा शिवसिंह का कुल साढ़े तीन वर्षों तक रहा। शिवसिंह ने १४४६ ई० राज्य प्राप्त किया। शिवसिंह की छः पत्नियाँ थीं—विश्वास देवी, सम्भाइनी देवी, रत्ना देवी, लखिमा देवी, उमा देवी एवं गुणा देवी, एवं निस्सन्तान राजा के मृत्यूपरान्त लखिमा देवी एवं विश्वास देवी ने राज्य का शासन किया था। किन्तु कोई भी कथा सत्य नहीं है।

शिवसिंह के राज्यकाल की, एवं विद्यापति के जीवनकाल की एक निर्दिष्ट तारीख लक्ष्मण संवत् २९१ (=१४१०) है। इस साल के कार्तिक महीने में "महाराजाधिराज श्रीमान् शिवसिंहदेव सम्भुज्यमान तीरभुक्तौ श्री गजरथपुर नगरे सप्रक्रिय सदुपाध्याय ठक्कुर श्री विद्यापति नामाज्ञया" खौयाल ग्रामीण श्री देवशर्मा एवं बलियास ग्रामीण श्री प्रभाकर—दोनों ने मिलकर तर्काचार्य्य ठक्कुर श्रीधर विरचित काव्य प्रकाश विवेक की पोथी लिखी थी।[2] यहाँ प्रसंग क्रम से विद्यापति की तथाकथित हस्तलिखित भागवत पोथी की चर्चा करता हूँ। राजकृष्ण मुखोपाध्याय से प्रारम्भ कर सबों ने इस पुस्तक की दुहाई दी है। किन्तु तारीख के पाठ में विभिन्न विद्वानों के अलग-अलग विचार हैं। राजकृष्ण एवं ग्रीयर्सन ने लक्ष्मण संवत् ३४९ का पाठ स्थिर किया है। नगेन्द्रनाथ गुप्त एवं

---

१. गज्जनेश्वर पाठ भ्रान्तिपूर्ण है।
२. ग ४७३८।

उनके अनुवर्तियों ने इसे ३०६ बताया हैं। राजकृष्ण एवं ग्रीयर्सन ने जब पोथी देखी थी तब पोथी की आयु कुछ कम थी एवं उसकी हालत भी निश्चय अच्छी थी। अतः जब तक पोथी अथवा उसकी अच्छी प्रतिलिपि आँखों से नहीं देख ली जाती है तब तक इनके पाठ ही ग्राह्य हैं। पोथी यदि विद्यापति की ही लिखी हो तो उनके जीवनकाल के अन्तिम समय का एक वर्ष लक्ष्मणाब्द ३४६ (= १४६८) ज्ञात हुआ। कवि जो १४६० ई० तक जीवित थे उसका प्रमाण है। इसके विषय में बाद में कहूँगा।

शिवसिंह के राज्यकाल में विद्यापति की कवि प्रतिभा चरम उत्कर्ष पर थी। इनके अधिकांश पदों की भणिताओं में शिवसिंह का उल्लेख है। शिवसिंह का विरुद "रूपनारायण" था, सो विद्यापति के पदों से ही जान पाते हैं। अन्य राजाओं का भी यह विरुद था। सुतरां, रूपनारायण कहने से केवल शिवसिंह का बोध नहीं होता है। पदों की भणिताओं में शिवसिंह की पत्निओं के जो नाम है उनमें लखिमा देवी, सुखमादेवी मोदवतीदेवी–इन्हीं तीनों के विषय में स्थिर मत पाया जाता है। "सोरम-देइ", "मधुमतीदेइ", "रेनुकदेइ", रुपिणिदेइ" ये सभी पाठ भ्रान्त हैं[1]। तिरहुत के राजमहल में और भी लखिमादेवी थी। शिवसिंह के चचेरे भाई नरसिंह के बड़े बेटे की पत्नी का नाम भी लखिमा था।

शिवसिंह के मृत्यूपरोन्त विद्यापति को फिर मौलिक कवि-शिल्पी के रूप में नहीं पाते हैं, उन्हें प्रधानतः स्मार्त्त पण्डित-मूर्ति के रूप में पाते हैं।

---

१. आगे चलकर आलोचना की गयी है।

'लिखनावली'[1] के रचयिता यदि यही विद्यापति हों, तब वे किसी समय द्रोणवार राजा, सर्वादित्य के पुत्र 'गिरिनारायण' पुरादित्य के सभासद थे। इसी पुरादित्य ने उनसे लिखनावली लिखाई थी। ग्रन्थ के उपक्रम मे विद्यापति लिखते हैं,

सर्वादित्य तनूजस्य द्रोणवारमहीपतेः।
गिरिनारायणस्याज्ञां पुरादित्यस्य पालयन् ॥
अल्पश्रुतोपदेशाय कौतुकाय बहुश्रुताम्।
विद्यापतिः सतांप्रीत्यै करोति लिखनावलीम् ॥

उपसंहार के श्लोक से ज्ञात होता है निष्ठुर बौद्धराजा अर्ज्जुन को संग्राम में पराजित कर पुरादित्य ने लूट के धन को गरीबों में बाँट दिया था एवं जनपद्को अधिकार में कर लिया था।

जित्वा शत्रुकुल तदीयवसुभिर्येनार्थिनस्तर्पिता।
दोर्दर्पार्जित सप्तरी जनपदे राज्य स्थितिः कारिता।
संग्रामेऽर्जुनभूपतिर्विनिहतो बौद्धो नृशंसायित-
स्तेनेयं लिखनावली नृप पुरादित्येन निर्मापिता ॥

जिनका अनुमान है कि यह अर्ज्जुन भूपति, तिरहुत के ब्राह्मण राजवंश के अर्ज्जुन सिंह थे, उनकी धारणा नितान्त भ्रान्त है। ये सब बौद्ध नहीं थे। ये यदि नेपाल के जयार्जुनमल्लदेव (—राज्यकाल चतुर्दश शताब्दी का अन्तिम चरण) हों, तो यह लिखनावली विद्यापति की प्रथम रचना हुई। नेपाल का राजवंश उस समय सर्वथा बौद्ध न होकर बहुत अधिक बौद्ध भावापन्न था।

---

१. प्रायः चालीस वर्ष पहले दरभंगा में छपी थी।

सत्तरहवीं शताब्दी के एकदम अन्त में संकलित लोचन की रागतरंगिणी में उद्धृत इस पदांश में पुरादित्य का नाम है,

पुरह पुरादित अभिमत पुरु
दारिद - दुःख दूरेँ परिहरु।
तोहरा चरण सरण जे आब
धन वित पूत परमपद पाव ।।

निंस्सन्तान शिवसिंह के राज्याधिकार के उत्तराधिकारी उनके अनुज पद्मसिंह हुए। शारीरिक अथवा मानसिक अस्वस्थता के कारण या अन्य किसी कारण से पद्मसिंह की पत्नी विश्वासदेवी ने राज्यभार अपने हाथों में लिया था। शिवसिंह की मृत्यु के बाद विद्यापति, विश्वास देवी को ही छत्रछाया मे दिखाई देते हैं। रानी के लिये कविने 'गंगा वाक्यावली'[1] एवं 'शैवसर्वस्वसार' (वा 'शैवसर्वस्वहार')[2] नाम से पूजापद्धति की दो पुस्तकों का संकलन किया था।

गंगावाक्यावली के अन्तिम श्लोक में विद्यापति कहते हैं कि विश्वास देवी कृत निबन्ध में ही केवल प्रमाण-श्लोक उद्धृत कर उन्होंने पूर्णता दी है।

१. इ ८१३ A; मित्र १८८८। 'गङ्गा भक्ति तरंगिणी' (मित्र १८६७) विद्यापति की रचना नहीं, धीरेश्वर के पुत्र गणपति (अथवा गणेश्वर) की है। गणेश्वर को कुछलोग विद्यापति के पिता मानकर भूल करते हैं। गणेश्वर के पुत्र 'महामहत्तक' रामदत्त ने अनेक स्मृति निबन्धों की रचना की थी। गणपति की दूसरी पोथी है 'सुगति सोपान'। २२४ ल० सं० में लिखित इस ग्रन्थ की प्रति नेपाल दरबार के संग्रह में है।

२. मित्र १९८३।

कियन्निबन्धमालोक्य श्री विद्यापति सूरिणा ।
गङ्गावाक्यावली देव्याः प्रमाणैर्विमलीकृता ॥[1]

शैवसर्वस्वसार के उपक्रम में कवि की लेखनी, स्रग्धरा छन्द के चौताल में, राजमहिषी के स्तुति गुंजन से मुखरित हुई है ।

दुग्धाम्भोधेरिव श्रीर्गुणगणसदृशे विश्वविख्यातवंशे
सम्भूता पद्मसिंहक्षितिपतिदयिता धर्म्मकर्म्मैक सीमा ।
पत्युः सिंहासनस्था पृथु मिथिलमहीमण्डलं पालयन्ती
श्रीमद् विश्वासदेवी जगति विजयते चर्य्ययाऽरुन्धतीव ॥

इन्द्रस्येव शची समुज्ज्वलगुणा गौरीव गौरीपतेः
कामस्येव रतिः स्वभाव मधुरा सीतेव रामस्य या ।
विष्णोः श्रीरिव पद्मसिंहनृपतेरेषा परा प्रेयसी
विश्वख्यातनया द्विजेन्द्रतनया जागर्त्ति भूमण्डले ।...

लीलालोलावनाली [रु] चि निचयदलद्वीचि विस्तारभार-
प्रव्यक्तोन्मुक्तमुक्तातरलतरतरद्वन्द्वसन्दोहवाहुः ।
पुष्पात् पुष्पौघमालाकुलकलितसद्भृङ्ग सङ्गीतसङ्गी
श्रीमद्विश्वासदेव्याः समरुचिरुचिरो विश्वभागस्तड़ागः ॥

नित्यं देवद्विजार्थं द्रविणवितरणारम्भसम्भावितश्री-
धर्मज्ञा चन्द्रचूड़ प्रतिदिवससमाराधनैकाग्रचित्ता ।
विज्ञानुज्ञाप्य विद्यापतिकृतिनमसौ विश्वविख्यात कीर्तिः
श्रीमद्विश्वासदेवी विरचयति शिवं शैवसर्वस्वसारम् ॥

---

१. दानवाक्यावली में भी इसी प्रकार की उक्ति है ।

अर्थात् क्षीरसागर से जिस प्रकार लक्ष्मी प्रकटित हुई थी उसी प्रकार विश्वविख्यात गुणगणाढ्य वंश में पद्मसिंह की प्रिया ने जन्म ग्रहण कर, धर्मकर्म की सीमा को छू लिया है। पति के सिंहासन पर बैठकर जो विश्वास देवी मिथिला-मही का पालन करती है, वह पातिव्रत्यचर्या में अरुन्धती की भाँति विश्वविजयिनी है।

इन्द्र की गुणोज्ज्वला शची की तरह, गौरीपति की गौरी की तरह, काम की रति की तरह, राम की स्वभावमधुरा सीता की तरह, विष्णु की लक्ष्मी की तरह, पद्मसिंह नृपति की यह परम प्रेयसी, द्विजेन्द्रकन्या एवं विख्यात नीतिज्ञा, भूमण्डल में जाज्वल्यमान रही है।....

लीला से चंचल वृहत् वन की शोभा को जीतनेवाला, तरंग के विस्तारभार से प्रकट उन्मुक्त मुक्ता की तरलद्युति द्वन्द्व की तरह स्पन्दित बाहुयुक्त, एक पुष्प से दूसरे पुष्प समुदाय की माला, समूह से संलग्न विलासी भ्रमर श्रेणी के संगीत का संगी, सन्तुलित सौन्दर्ययुक्त, श्रीमती विश्वासदेवी का विश्वभाग तड़ाग था।

देव द्विज के लिये धन वितरण करने से जिनकी सम्पदा गौरवान्वित हुई है, जिनकी धर्मज्ञा, जिनका चित्त चन्द्रचूड़ की नित्य पूजा में लीन है, वही विश्वविख्यात कीर्ति, श्रीमती विश्वासदेवी, विज्ञों के अनुज्ञाप्य कृती विद्यापति द्वारा माङ्गल्य शैवसर्वस्वसार की रचना कराती है।

इस प्रशस्ति में यह स्पष्ट नहीं होता है कि उस समय विश्वास देवी सधवा थीं वा विधवा। तब उनकी, जिस प्रकार अरुन्धती से सीता पर्यन्त पौराणिक सती-पतिव्रताओं के साथ तुलना की गयी है, उससे अनुमान होता है कि उस समय पद्मसिंह जीवित थे।

विद्यापति के किसी पद में पद्मसिंह—विश्वासदेवी का उल्लेख नहीं है। इसके दो कारण हो सकते हैं। विद्यापति ने निश्चय ही उस समय पद रचना छोड़ दी थी अथवा अवस्था के अन्तर के कारण पद्मसिंह के साथ उनकी वैसी अंतरंगता नहीं थी। मिथिला का यह श्रोत्रिय राजवंश विशेषतः शिव का उपासक था। वे लोग राधाकृष्ण के प्रणय गीत को सुनकर सर्वदा भक्ति से भर जाते थे, या नहीं, सो तो नहीं मालूम, पर प्रधानतः विलासकला कौतुकी होते थे। सुतरां विशेष सौहृद्य न रहने से उन दिनों भी प्रणय कविता में किसी पति-पत्नी का नाम लेना संगत नहीं होता।

तत्पश्चात् विद्यापति को दर्पनारायण' नरसिंह की सभा में देखते हैं। नरसिंह एवं उनकी पत्नी धीरमती देवी के आश्रय में रहकर विद्यापति ने तीन पुस्तकों का संकलन किया था। उनमें से एक दायभाग सम्बन्धी निबन्ध 'विभागसार'[१] है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में, मंगलाचरण के बाद के श्लोक में विद्यापति ने राजा का यह वंश-परिचय दिया है,

राज्ञो भवेशाद्धरिसिंह आसीत्
तत्सूनुना दर्पनरायेण।[२]
राज्ञो नियुक्तोऽत्र विभागसारं
विचार्य विद्यापतिरातनोति ॥

१. मित्र २०३७।

२. छन्द के अनुरोध से 'नारायण' का 'नरायण' हुआ है।

दूसरी पुस्तक 'दानवाक्यावली'[1] भी स्मृति निबन्ध है, जो धीरमती देवी के आदेश से लिखी गयी थी। ग्रन्थारम्भ में महादेवी की यह प्रशस्ति है,

श्री कामेश्वरराजपण्डितकुलालङ्कारसारः श्रिया—
माराधो नरसिंहदेवमिथिलाभुमण्डाखण्डलः ।....
तस्योदारगुणाश्रयस्य कृतिनः क्ष्मापालचूड़ामणेः
श्रीमद्धीरमतिः प्रिया विजयते भूमण्डलालंकृतिः ।...
विज्ञानुज्ञाप्य विद्यापतिमति कृतिनं सम्प्रमाणामुदारां
राज्ञी पुण्यावलोका विरचयति नवां दानवाक्यावलीं सा ॥

अर्थात् राजपण्डित कामेश्वर के वंश के तिलक, सम्पदा के आश्रय, मिथिला-भूमि के इन्द्र, नरसिंहदेव ।....उदार, गुणवान, कृती उस नृपति वर की प्रिया, पृथ्वी का अलंकार श्रीमती धीरमती विजयिनी ।....शुचि दृष्टिमती रानी ने, अतिशय कृती एवं विज्ञों के अनुज्ञाप्य विद्यापति द्वारा, इस प्रमाणयुक्त उदार नव दानवाक्यावली की रचना करायी।

दानवाक्यावली को "नवा" कहने का कारण यह है कि इससे पहले इसी नामसे, महामन्त्री चण्डेश्वर ने एक पुस्तक लिखी थी।

३४१ लक्ष्मण संवत् (=१४६०) में विद्यापति (अथवा राजमहिषी) ने दानवाक्यावली की एक प्रति रत्नपाणि को दी थी। इसकी सूचना एक पुस्तक के पुष्पिका श्लोक में पाते हैं।

---

१. मित्र ३१२, १८३०; नेपाल दरबार की पोथी, ३९६ लक्ष्मण संवत् (=१५१४) में लिखित।

वर्षे गौड़महीभुजः शशिसरिन्नाथाग्निचिन्हे शुचौ
पञ्चम्यां भृगुनन्दने रतिपतिः श्रीमानसे श्रीर्षदा (?)
एतत् पुस्तकमुत्तमं गुणगणग्रामाभिरामाय वै
गोविन्दार्चन तत्पराय भवते श्रीरत्नपाणेहस्तते ॥[१]

ये "गोविन्दार्चनतत्पर" रत्नपाणि निश्चय ही वही रत्नपाणि हैं जिन्होंने मिथिला के एक राजा—सम्भवतः नरसिंह—के आदेश से ("श्री मैथिलेशाज्ञया") 'कृष्णार्चन चन्द्रिका'[२] की रचना की थी। रत्नपाणि विद्यापति के मित्र के पुत्र थे। उनके पिता अच्युत शिवसिंह के सभासद थे। इसकी चर्चा रत्नपाणि के पुत्र रवि ने स्वलिखित काव्यप्रकाश की 'मधुमती' टीका में की है।[३]

विद्यापति ३४१ लक्ष्मणाब्द (=१४६०) तक केवल जीवित ही नहीं थे बल्कि समर्थ एवं अध्यापनरत थे, जिसका स्वतन्त्र एवं सशक्त प्रमाण मिलता है। इसी साल, मुड़ियार ग्राम में विद्यापति के एक अध्यापनाधीन छात्र श्री रूपधर ने हलायुध मिश्र के ब्राह्मणसर्वस्व की प्रतिलिपि कर, उसे सद्ब्राह्मण श्री सोमेश्वर के साहाय्य से मूल प्रति के साथ मिलाकर शुद्ध कर लिया था। पुस्तक[४] की मूल्यवान पुष्पिका को यहाँ उद्धृत करता हूँ,

१. मित्र ३१२। लिपिकाल १६८५ शकाब्द।

२. मित्र १८९४।

३. एसियाटिक सोसाइटी पत्रिका के नव-पर्याय के एकादश खण्ड में मनमोहन चक्रवर्त्ती का प्रबन्ध (पृ० ४२२ पादटीका) द्रष्टव्य।

४. नेपाल दरबार की पोथी।

ल०सं० ३४१ मुड़ियारग्रामे सप्रक्रिय सदुपाध्याय-निजकुल-कुमुदिनी चन्द्रवादिमत्तेभसिंहसच्चरित्र—पण्डित श्रीविद्यापति महाशयेभ्यः पठता छात्र—श्रीरूपधरेण लिखितमदः पुस्तकम् ।

पक्षे सितेऽहसौ शशिवेदराम-
युक्ते नवम्यां नृपलक्ष्मणाब्दे ।
श्रीपूर्व सोमेश्वर-सद्द्विजेन
पुस्ती विशुद्धा लिखिता च भाद्रे ॥

नरसिंह—धीरमतिदेवी के आदेश से रचित विद्यापति का तीसरा निबन्ध 'दुर्गापूजा तरंगिणी'[1] है। उपक्रम में राजस्तुति के अनन्तर कहा गया है कि पूर्वकृत निबन्ध को देखकर, राजा, विद्यापति को आदेश दे, विश्व की हित कामना से दुर्गोत्सवपद्धति लिखाते हैं।

विश्वेषां हितकाम्यया नृपवरोऽनुज्ञाप्य विद्यापतिं
श्री दुर्गोत्सव पद्धतिं वितनुते दृष्ट्वा निबन्धस्थितिम् ॥

महामहोपाध्याय माधव नामक एक और मैथिल पण्डित ने 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' नाम से पुस्तक लिखी थी।[2]

---

१. मित्र १८७६। राजकृष्ण-ग्रीयर्सन ने जो प्रति देखी थी उसमें नरसिंह की जगह 'रूपनारायण' भैरवेन्द्र का नाम है। 'रूपनारायण' भैरवचन्द्र के पुत्र रामभद्र का विरुद था। विनोदविहारी काव्यतीर्थ ने जो प्रति देखी थी उसमें 'भैरवात्मज' है। ग ४७६० से स्पष्टतः बोध होता है कि विद्यापति को रचना करने का आदेश नरसिंह एवं उनके पुत्रों ने दिया था।

२. मित्र १८७८।

१४६० ई० के बाद विद्यापति अधिक दिनों तक जीवित रहे ऐसा नहीं प्रतीत होता है। यही कारण जान पड़ता है कि उन्हें और किन्हीं राजा के सम्पर्क में नहीं पाते हैं। तब भी, आलोचना की पूर्णता के लिये, नरसिंह के परवर्ची राजाओं का अनुसरण किया जाय।

नरसिंह के तीन पुत्र थे, "हृदयनारायण" धीरसिंह, "हरिनारायण" भैरवसिंह (वा भैरवेन्द्र) एवं चन्द्रसिंह। धीरसिंह का नाम उनके पौत्र गदाधर के आदेश से लिखित तन्त्रप्रदीप में पाते हैं। यह शारदा-तिलक तन्त्र की टीका है। धीरसिंह के विरुद का उल्लेख, भैरवसिंह द्वारा लिखाये गये 'विष्णुपूजा कल्पलता'[1] में है। धीरसिंह अन्ततः १४४० से १४४७ ई० तक राज्याधिकारी थे। क्योंकि इन दोनों सालों में, इनके राज्यकाल की लिखित पुस्तकें पाई गई हैं।[2]

भैरवसिंह की निजी सभा में दो-तीन बड़े पंडितों को पाते हैं— वर्द्धमान, वाचस्पति एवं रुचिपति। भैरवसिंह के निर्देश से धर्माधि-करणिक वर्द्धमान ने 'दण्डविवेक', 'स्मृतितत्वामृत', 'कृत्यमहार्णव' इत्यादि; वाचस्पति ने 'महादाननिर्णय', शूद्राचारचिन्तामणि', 'पितृ-

---

१. नेपाल दरबार में इसकी दो प्रतियाँ हैं। एक का लिपिकाल ल० स० ३४७ (= १४६६) है। यह सहज ही इसका रचनाकाल हो सकता है।

२. एक पुस्तक की रचना लक्ष्मणाब्द ३२१ में हुई थी (साहित्य परिषत् पत्रिका सप्तम भाग पृ० ३३)। और एक महाभारत के कर्णपर्व की पुस्तक है जिसकी रचना ३२७ लक्ष्मणाब्द में हुई थी (बिहार उड़िसा रिसर्च सोसाइटी की पत्रिका, प्रथम खण्ड द्रष्टव्य)।

भक्तिचिन्तामणि', प्रभृति; रुचिपति ने अनर्घराघव इत्यादि की टीका लिखी थी। कृत्यमहार्णव के रचनाकाल के बाद से भैरवसिंह के राज्य-कालके एक वर्ष का निर्देश पाया जाता है, वह ३४१ लक्ष्मण-सम्वत् (=१४६०) है।

मिथिलावलयविड़ौजः—श्रीहरिनारायणस्य कृतिरेषा।
प्रकाशिता तू यावद् भुवने विष्णोर्विलोचने गगने॥

तब यहाँ एक बात को स्मरण रखने की आवश्यकता है कि नेपाल की ही भाँति सम्भवतः तिरहुत में भी, पिता के जीवनकाल में ही पुत्र भी राजसम्मान के अधिकारी होते थे। इसके अतिरिक्त अनुगत लेखकों के लिए राजपुत्र को राजा बना देना एकदम सहज था।

पूर्व ही कहा है कि मिथिला का राजवंश शैव था। भैरवसिंह वैष्णवभावापन्न हुये थे। कृत्यमहार्णव में वर्द्धमान ने उन्हें "श्री वासुदेव भक्तः.... श्री मानयं नरेन्द्रः" कहा है। वर्द्धमान एवं वाचस्पति प्रभृति इनके कतिपय प्रमुख सभासद भी वैष्णव थे, ऐसा मालूम पड़ता है। वर्द्धमान ने पदावली की रचना की थी या नहीं सो तो मालूम नहीं, पर लिखते तो अच्छा ही लिखते। दण्डविवेक के मंगलाचरण के दोनों श्लोकों में सफल चित्रकार की लेखनी के स्पर्श हैं,

पाणिभ्यामुपजातवेपथुतया यत्नेन यः कल्पितो
येन श्वेदजलौघपूरिततया नापेक्षितोऽम्बुग्रहः।
सन्ध्यार्थत्वमवेत्य यो मुकुलिते सव्ये करे कम्बुना
सादृश्यं गतवान् स पातु शिवयोः सायन्तनोऽर्घ्याञ्जलिः॥

साद्धं राधिकया वनेषु विहरन्नस्याः कपोलस्तले
घर्माम्भोविसरं प्रसारिणमपकर्त्तुं करेण स्पृशन् ।
तत्र प्रत्युत सात्विकाम्बुमिलनाद्दौ जायमाने जवाद्
अव्याद् वो विफलप्रयासविकलो गोपालरूपो हरिः ॥

अर्थात्, सात्विक भाव के कारण कम्पित होने से यत्नपूर्वक निमित, स्वेदजल के कारण जल की अपेक्षा से रहित, सन्ध्यार्चन के लिये मुकुलित शंख के रूप की समता पानेवाली, शिव-शिवा युगल दम्पति द्वारा अर्पित सायंकालीन हस्ताञ्जलि आपकी रक्षा करे।

राधा के साथ वनबिहार करते-करते, उनके कपोल पर निकल आये श्वेद बिन्दुओं को पोंछते हुये, हाथ के स्पर्श से राधाके अंग में सात्विक भाव के उद्रेक से अधिक श्वेद निकल आने से, जो गोपाल रूप हरि विफल प्रयास हुये, वे आपका पालन करें ।

वाचस्पति इस गोपाल बन्दना से ही महादान निर्णय का आरम्भ करते हैं,

अभिनव नवनीत प्रीत माताम्रनेत्रं
विकचनलिन लक्ष्मीस्पर्द्धि सानन्द वक्तुम ।
हृदय भवन मध्ये योगिभिर्ध्यात नीलं
नव गगन तमालश्यामलं कञ्चिदीड़े ॥

अर्थात्, अभिनव नवनीत से प्रसन्न हो जिनकी आँखें प्रेमासक्त हो गयी हैं एवं सानन्द वदन प्रस्फुटित कमल की शोभा हरण किये हैं, जिस नीलकान्ति का ध्यान योगीगण हृदयमन्दिर में करते हैं, निर्मल आकाश एवं तमाल सदृश श्याम, इस प्रकार अनिर्वचनीय किसीकी मैं बन्दना करता हूँ ।

भैरवेन्द्र के अनुज[1] चन्द्रसिंह का नाम अधिक नहीं पाया जाता है। किन्तु "श्री चन्द्रसिंहनृपतेर्दयिता" लखिमा देवी अख्यात नहीं हैं। इन्होंने अपने भागिनेय अथवा भ्रातृष्पुत्र (?) मिसरू मिश्र के द्वारा पदार्थचन्द्र' (वा 'पदार्थचन्द्रिका')[2] एवं 'विवादचन्द्र'[3] नामक दो पुस्तकें लिखवायी थीं। दोनों ही पुस्तकों के नामकरण में लखिमादेवी की स्वामिभक्ति का परिचय मिलता है। मिथिला की राजपरम्परा के प्रामाणिक इतिहास मे, यही एकमात्र राजमहिषी लखिमा देवी हैं। विद्यापति के पदों की भणिताओं मे जिस शिवसिंह-महिषी लखिमादेवी का नाम बारंबार पाते हैं, वह किसी पोथी के श्लोक अथवा पुष्पिका द्वारा समर्थित नहीं होता है।

भैरवसिंह के रामभद्र एवं पुरुषोत्तम नामक दो पुत्र थे। ये दोनों सहोदर थे या नहीं, सो नहीं मालूम है। तब पुरुषोत्तम की माता का नाम जया था। "श्री भैरवेन्द्रधरणीपतिधर्मपत्नी राजाधिराज पुरुषोत्तमदेव माता" जयादेवी के आदेश से वाचस्पतिने "द्वैतनिर्णय[4]" की रचना की थी। कवि गजसिंह के दो पदों में नृपपुरुषोत्तम एवं असमति देवी का उल्लेख है[5]। सभव है कि ये पुरुषोत्तम, भैरव सिंह के पुत्र हों।

रामभद्र का विरुद "रूपनारायण" था। जीवनाथ के एक पदकी भणिता में "मेधादेइ-पति" रूपनारायण का उल्लेख है।[6] इस रूपनारायण

१. ग ४७६०

२. मित्र २१७२, २९०१

३. मित्र १८५९, इ ९९५

४. मित्र २७५

५. लोचन की रागतरंगिणी में (पृ० ६८, ७२) उद्धृत।

६. ऐ पृ० ११२। नगेन्द्रनाथ गुप्तने इस पद (६०) में विद्यापति की भणिता दी है।

के रामभद्र होने से मेधादेइ, इन्हीं की पत्नी का नाम हुआ। रामभद्र की सभा में ही धर्माधिकरणिक महामहोपाध्याय वर्द्धमान को पाते हैं। वर्द्धमान ने "महाराजाधिराज हरिनारायणात्मज-महाराजाधिराज श्रीमद्रामभद्रदेव पादानां कृते" 'गंगाकृत्य विवेक'[1] की रचना की थी। ग्रन्थ के आरम्भ में, द्वितीय श्लोक में, इन्होंने राजा की यह वंशपरम्परा दी है,

कामेशो मिथिलामशासद्युदभूद स्माद् भवेशः सुतः
संजज्ञे हरिसिंहभूपतिरतो जातो नृसिंहो नृपः।
तस्माद् भैरवसिंह भूपतिरभूत् श्री रामभद्रस्ततो
दीपाद्दीप इवाभवत् स इव सम्राजां गुणैरुर्जितः ॥

गंगाकृत्यविवेक में वर्द्धमान ने स्वरचित "गयाविधि" (वा 'गयाकृत्य') निबन्ध के नाम की चर्चा की है। शायद इसी पुस्तक को बहुतों ने विद्यापति रचित 'गयापत्तन' (!) समझा है।

वाचस्पति की पितृभक्ति तरंगिणी में रामभद्र का उल्लेख ग्रन्थ का उद्योक्ता कहकर किया गया है। उस समय तक वे राजा नहीं हुये थे। पुष्पिका में "इति श्री महाराजाधिराज श्री हरिनारायणात्मज-श्रीरूपनारायणपदवीमलङ्कृत-मिथिलामण्डलाखण्डल-श्री रामभद्रचरणादिष्टेन परिषदा श्री वाचस्पतिशर्मणा विरचितोऽयं श्राद्धकल्पः परिपूर्णः" है।

---

१. ब्रिटिश म्यूजियम की पोथी (प्राच्य ३५६७ A)। लिपिकाल ल० सं० ३७६ (=१४९६) काओयेल ने रामभद्र की जगह भैरवसिंह को रखकर भूल की है। १४९६ ई० में भैरवसिंह के जीवित रहने का कोई स्वाधीन प्रमाण नहीं है।

१४९७ ई० के प्रारम्भ में भी रामभद्र जीवित थे। इसका प्रमाण महामहोपाध्याय हरिनाथकृत 'स्मृतिसार' की एक प्रति की पुष्पिका में पाते हैं। इस प्रति में लिखे जाने के समय का उल्लेख इस प्रकार है—"संवत् श्रीमद्रूपनारायण–भुज्यमानायां तीरभुक्तौ"।[1]

धीरसिंह के पुत्र राघवेन्द्र (वा राघवसिंह) एवं पौत्र गदाधर का नाम 'तन्त्रप्रदीप'[2] में है। शारदातिलक की टीका गदाधर ने की थी अथवा करायी थी। गदाधर के निर्देश से की गयी प्रतिलिपि की पुष्पिका में इनके जीवनकाल के दो तारीख मिलते हैं। ३७२ लक्ष्मणाब्द (=१४९१) में इन्होंने शुभपति के द्वारा भोजदेव रचित 'विविधविद्याचतुर'[3] नामक पोथी की प्रतिलिपि करायी थी। दो वर्षों के पश्चात् इन्होंने कृतकल्पतरु के दानखण्ड की प्रतिलिपि करायी थी।[4]

रामभद्र के पश्चात् उनके पुत्र 'कंसनारायण' लक्ष्मीनाथ राजा हुये। भैरवसिंह के सभासद् "बैजोलीग्रामनिवासि-विख्यात-खौआल-ग्रामीण" महामहोपाध्याय रुचिपति शर्मा[5] के पुत्र "आगमाचार्य" हरपति ने "समस्तप्रक्रीयाविराजमान-शिवभक्ति परायण-महाराजाधिराज-श्रीमत् कंसनारायण श्रीमल्लक्ष्मीनाथदेव-प्रोत्साहिताज्ञया" तान्त्रिक पूजानिबन्ध "मन्त्रप्रदीप"[6] लिखा था। लक्ष्मीनाथ के राज्यकाल का एक वर्ष ज्ञात है। ३९२ लक्ष्मणाब्द (=१५१०) में इसी महाराजाधिराज कंसनारायणदेव के निमित्त उदयकर ने देवीमाहात्म्य पुस्तक की नकल की थी।[7]

---

१. नेपाल दरबार की पोथी। २. मित्र २१७२। लिपिकाल १४९३ शकाब्द। ३. नेपाल दरबार की पोथी। ४. ग ४०२६। ५. इसका उल्लेख आगे किया गया है। ६. मित्र २०११। ७. नेपाल दरबार की पोथी।

लोचन की रागतरंगणी[1] में उद्धृत गोविन्ददास के दो पदों की भणिताओं में कंसनारायण एवं उनकी पत्नी सोरमदेवी का उल्लेख है। ये गोविन्द-दास यदि बंगाली गोविन्ददास कविराज न हों तो ये कंसनारायण, लक्ष्मीनाथ हो सकते हैं।

उपर्युक्त आलोचना में निर्धारित तिरहुत की श्रोत्रिय राजवंश पर-म्परा को समझने की सुविधा के लिये यहाँ वंशवृक्ष दिया जाता है।

राजपण्डित कामेश वा कामेश्वर
- राय भोगेश वा भोगेश्वर
  - राय गणेश वा गणेश्वर
    - रामसिंह
    - वीरसिंह
    - किर्त्तिसिंह
- भवेश वा भवसिंह
  - "गरुड़नारायण" देवसिंह
    - "रूपनारायण" शिवसिंह
    - पद्मसिंह
  - हरिसिंह वा हरसिंह
    - "दर्पनारायण" नरसिंह
      - "हृदयनारायण" धीरसिंह
        - राघवसिंह वा राघवेन्द्र
          - गदाधर
      - हरिनारायण
      - भैरवसिंह वा भैरवेन्द्र
        - "रूपनारायण" रामभद्र
          - "कंसनारायण" लक्ष्मीनाथ
        - पुरुषोत्तम
      - चन्द्रसिंह

---

१. पृष्ठ १००–०१।

विद्यापति के नाम से प्रचलित एवं प्रचारित पदावली की भणिताओं में अनेक व्यक्तियों एवं दम्पतियों के नाम पाये जाते हैं। कितनों को तो सहज ही कवि के आश्रयदाता राजा-रानी के रूप में पहचाना जा सकता है। और कतिपय कवि के बन्धु एवं पृष्ठपोषक, राजपरिजन किंवा राज-परिवार के ही व्यक्ति होंगे ऐसा समझना स्वाभाविक है। जो-जो नाम पाये जाते हैं उसकी सूची दे रहा हूँ।

"भोगीसर-राउ पदमादेइ" एक पद में प्राप्त है।[1] ये यदि कीर्त्ति-सिंह के माता-पिता हों एवं भणिता विशुद्ध हो तो यह पद विद्यापति के कवि जीवन की प्रारंभिक रचना है।

"ग्यासदीन सुरतान" एक पद में है।[2] मालूम पड़ता है कि यह बंगाल का इलियास-शाही सुलतान गियासुद्दीन आजमशाह (राज्यकाल १३९२–१४१०) है। स्वरचित एक आंशिक कविता को पूरा कराने के लिये इसने कवि हाफेज को आमन्त्रित करने के लिये अपने आदमी को शिराज भेजा था। हाफेज आया तो नहीं पर उसने कविता को पूरी करदी। एसिया के एक प्रान्त में विद्यापति थे और दूसरे प्रान्त में हाफेज। इन दोनों महाकवियों का आत्मिक मिलन इस गौड़ सुलतान के दरबार में हुआ था।

---

१ गुप्त ८०१।

२ रागतरंगिणी पृ० ५७ ; गुप्त २६८ (पाठ "ग्यासदेव")।

"आलमशाह" भी एक पद में है।[१] कवि की भणिता में ,'विद्यापति' नहीं "दश अवधान" अर्थात् दशावधान है। यह विरुद विद्यापति का हो सकता है। आलमशाह कौन है, यह नहीं ज्ञात है। तब यदि आजमशाह का भ्रान्त पाठ हो तो यहाँ भी गियासुद्दीन का उल्लेख मिलता है।

"मलिक बहारदीन" का उल्लेख एक पद में हुआ है।[२] मलिक असलान की भाँति क्या बहारुद्दीन भी दिल्ली, जौनपुर अथवा गौड़ की ओर से तिरहुत का शासनकर्त्ता था?

"नृप देवसिंह-गरुड़नारायण हासिनिदेइ[३]" पाँच पदों में मिलते हैं। ये शिवसिंह के माता–पिता थे।

"गरुड़नारायण-नन्दन" "रूपनारायण शिवसिंह" एवं "लखिमादेइ" अनेक पदों में प्राप्य हैं।[४] विद्यापति के अनुकरणकर्त्ताओं में सबों ने इन्हीं भणिताओं का व्यवहार किया है। एकपद में 'लखिमादेइ पति रूपनारायण-सुखमादेइ-रमाने" है।[५] एक साथ दो रानियों का उल्लेख अन्यत्र नहीं मिलता है। अतः भणिता में गड़बड़ी होने की आशंका होती है। "राजा रूपनरायण........राय सिवसिंह सुखमादेइ" एक पद मे है।[६] एक पद में शिवसिंह सोरम देवी'[७] है। यहाँ सोरम, सुषमा का भ्रान्तपाठ

१ रागतरंगिणी पृ० ८५, पदकल्पतरु (भनिताहीन); गुप्त "नाना प्रकार" ६। २ गुप्त ४३८। ३ रागतरंगिणी में दो हैं (पृ० ४६,८३) नगेन्द्रनाथ गुप्त के संकलन में और भी तीन हैं–५५ (पाठान्तर से), २६९, ४१८ ("गर्जसिंहदेव" के बदले-"नृपसिंहदेव" का पाठ है)। ४ रागतरंगिणी में चौदह हैं, उसमें से एक में (पृ१०७) "सिवसिंह-राउ" पाते हैं। ५ गुप्त ४०७। ६ ऐ १२७। ७ रागतरंगिणी. पृ० ९६।

है, अथवा पूर्व के ही दोनों मे 'सुखमा' "सोरम" का भ्रान्त पाठ है। दो पदों में "राजा सिवसिंह........मोदवती देइ कन्त" है।[1] एक पद में "सिवसिंह राजा........मधुमतीदेइ-सुकन्ता" पाते हैं।[2] यहाँ "मधुमती" "मोदवती" का अशुद्ध पाठ है अथवा ऊपर जो मोदवती है वही मधुमती का अशुद्ध पाठ हो सकता है। कीर्त्तनानन्द से उद्धृत एकपद की भणिता में "राजा सिवसिंह रूपनरायण रेणुक देवी-सुकन्ता" है। मिथिला का पाठ "लखिमा देइसुकन्ता" है।[3] यही पाठ ठीक है। एक पद में राए सिवसिंह-रूपिणि देइ" है।[4] रूपिणी देवी को अन्यत्र मंत्री रतिधर की पत्नी के रूप में पाते हैं।[5] सुतरां इस भणिता में भूल है।

"हरिसिंह देव" एक पद में पाते हैं।[6] ये शिवसिंह के पितृव्य हरिसिंह हैं ऐसा प्रतीत होता है।

एक पद में "हिन्दूपति" है।[7] "हिन्दूपति", कर्णाटवंशीय हरसिंह-देव का विरुद था। कवि उमापति के अनेक पदों की भणिताओं में "हिन्दूपति" है। इसीसे इस पद को उमापति की रचना मानने की इच्छा होती है। अतएव कवि की भणिता में "विद्यापति" न होकर "उमापति" हो सकता है।

एक पद में "नृप राघव",[8] एक पद में "राघवसिंह—सोनमती"[9] और एक पद में मोदवती-पति राघवसिंह"[10] लिखा हुआ है। ये राघवसिंह

१. ग्रीयर्सन ७५ (गुप्त ६९३), गुप्त ७४९। २. गुप्त १८६। ३. ऐ ५०। ४. ऐ ६१८। ५. ऐ ३३३। ६. पृ० ७६३। ७. ग्रीयर्सन २७ (गुप्त १५३)। ८. ग्रीयर्सन ६१ (गुप्त ७००)। ९. गुप्त ७२४। १०. ग्रीयर्सन ७६ (गुप्त ७८४)।

यदि धीरसिंह के पुत्र हों तो ये सारे पद विद्यापति के हैं, ऐसा कहना सर्वथा असम्भव नहीं हो सकता है। तब रागतरंगिणी में इस भनिता से एक भी पद नहीं है। इसीसे लगता है कि ये दरभंगा-राजवंश के राघवसिंह हैं।

कतिपय पदों में दो मंत्री दम्पतियों का उल्लेख है, "मति (=मंत्री) महेश (महेश्वर) रेणुकादेवी"[१] एवं 'मति (=मन्त्री) रतिधर रुपिणीदेइ"[२]।

जिस पद में "राए" दामोदर का उल्लेख है उसमें विद्यापति का विरुद दशशतावधान ("दसा सए अवधान") पाते हैं।[३]

"अरजुन-राए" के साथ "कमलादेवी" को दो पदों में पाते हैं[४] और "गुणादेइ रानि" को एक पद में[५]।

एक पद में 'कुमर अमर ज्ञानोदेइ' है।[६]

"चन्दल (चन्दन) देइपति बैजल देवा (वैद्यनाथ)"[७] का उल्लेख दो पदों में है। शङ्कर (?) एवं "जएमतीदेइ" के नाम एक पद में पाते हैं।[८]

---

१. रागतरंगिणी पृ० ४९ (गुप्त ६०९); गुप्त ७६, ८०३।
२. गुप्त ३३३। ३. ऐ १२०। ४. ऐ ९९, ३००। ५. ऐ ७२५।
६. ऐ ७२५। ७. रागतरंगिणी पृ १०८ (गुप्त "हरगौरी" ९. गुप्त ऐ १९। ८. गुप्त ३५७।

६

विद्यापति के किसी पद में उनके नाम के साथ जो विशेषण, विरुद अथवा उपाधि व्यवहृत हुये हैं वे यदि किसी और पद में स्वतन्त्र भाव से पाये जॉय तो उस पद को विद्यापति की रचना कहकर निर्धारित करना, अन्य कारणों के अभाव में, संगत नहीं होगा। विद्यापति के नाम का गौरव काफी था, सुतरां अपना नाम छोड़कर कवि केवल विरुद का व्यवहार करेंगे, सो जॅचता नहीं है। तब जहाँ छन्द की बाध्यता है, वहाँ "विद्यापति" की जगह नामान्तर अथवा विरुद का रहना स्वाभाविक है। कवि जीवन के प्रारम्भिक काल में, जब विद्यापति का नाम ख्यात नहीं हुआ था, तब भी विरुद का व्यवहार अनपेक्षित नहीं है। इस युक्ति के अनुसार "अभिनव-जयदेव" की भणिता से जो अवहट्ठ पद[1] हैं, उन्हें विद्यापति रचित कह सकते हैं। "विद्यापति कविकन्ठहार" में कोई आपत्ति नहीं है तब "कवि कन्ठहार" रहने से, वह विद्यापति का ही पद होगा, सो कहने से काम नहीं चलेगा। तब इसके साथ शिवसिंह, लखिमा इत्यादि रहने से[2] पद के, विद्यापति की रचना होने की सम्भावना बढ़ जाती है। "कवि शेखर" सम्भवतः विद्यापति का अन्यतम विरुद था, किन्तु केवल "कवि शेखर" भी अनेक थे।

विद्यापति की पदावली में और जिन-जिन कवियों के पद मिश्रित हो गये हैं उनकी आलोचना करता हूँ।

---

१. गुप्त "नाना प्रकार" १०। २. रागतरंगिणी पृ० ५२, ९१।

यशोधर

"नव-कविशेखर" यशोधर की भनिता से जो पद हैं उसमें "साह हुसेन" का उल्लेख है। यह पद केवल रागतरंगिणी में मिलता है।[१] नगेन्द्रनाथ गुप्त ने "यशोधर" के बदले "विद्यापति" कर दिया है। हुसेन-शाह को यहाँ पंचगौरेश्वर नहीं कहा गया है, इसीसे मालूम पड़ता है कि ये जौनपुर के अन्तिम सुलतान हुसेनशाह शर्की थे, जिन्होंने राजच्युत होने पर पहले तिरहुत मे, फिर बंगाल आकर गौड़-सुलतान, हुसेनशाह के शरणापन्न हो शेष जीवन को व्यतीत किया था। यशोधर नाम भी मैथिल जैसा है, उसी तरह जैसा जगद्धर–रुद्रधर–लक्ष्मीधर है। यशोराज–खान और यशोधर को एक समझने से भूल होगी।

कवि–रतनाञी

कवि रतनाञी एवं कवि रतन की भनिताओं से, रागतरंगिणी में दो पद हैं।[२] पहले पद की भनिता में "देवलदेवि लखनचन्द–राजा" उल्लिखित है। दूसरा पद शिववन्दना है। रागतरंगिणी मे, दो भनिताहीन पदों में। राजा लखनचन्द के नाम हैं,[३] जिन में पहला गद्य-पद्य ("दण्डक") छन्द में लिखित है। ये दोनो भी कविरत्न की रचनाएँ हो सकती है।

एक "कविरत्न" विष्णुदेव जो, विदितो विदेहे करम्वाहा वंशज वत्सगोत्रः" रामदत्त के प्रपौत्र वासुदेव के पौत्र एवं रघुनन्दन–सत्यवती

१. ऐ पृ० ६७। २. पृ० ७६–७७ (गुप्त १६ विद्यापति की भनिता से) पृ० १०५ (गुप्त "हरगोरी" ७१ विकृत पाठ, चार चरण अधिक है)।
१. पृ० ८८–८९, ११०।

के पुत्र थे, ने १५६८ ("वसु–रस–शर–शशी") शकाब्द (=१६४६) में 'रत्नकलाप' लिखा था[1]। क्या यही कवि हैं ?

भानु

इस भनिता के पदमें[2] चन्द्रसिंह का उल्लेख है। ये चन्द्रसिंह "दर्पनारायण" नरसिंह के पुत्र हो सकते हैं। भोलझा द्वारा संकलित मिथिला गीत संग्रह[3] में भानुनाथ कवि का जो पद संकलित हुआ है उसकी भनिता में महेश्वरसिंह का उल्लेख है। ये महेश्वर सिंह यदि दरभंगा के वर्त्तमान राजवंश के महेश्वर सिंह हों, तब भानुनाथ प्रायः आधुनिक काल के लोग हो सकते हैं।

रुद्रधर

इस भनिता के पद[4] में 'रूपनारायण' शिवसिंह एवं लखिमा के नाम हैं। ये कवि यदि 'व्रतपद्धति', 'शुद्धिविवेक', 'वर्षकृत्य' प्रभृति निबन्धों के संकलयिता स्मार्त्त पण्डित रुद्रधर उपाध्याय हों तो ये पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्यभाग मे हुये थे।

गजसिंह

रागतरंगिणी[5] में "गुणमय कवि" गजसिंह के तीन पद हैं। एक पद में "नृप पुरुषोत्तम असमतिदेइ" का उल्लेख है और अन्य पदों में

१. नेपाल दरबार की पोथी। लिपिकाल १६१२ शकाब्द।
२. गुप्त ३२२ ("नेपाल की पोथी")।
३. प्रथम भाग, पदसंख्या २।
४. गुप्त ५०१ ("नेपाल की पोथी")
५. पृ० ५०, ६८, ७२। अन्तिम पद में नगेन्द्रनाथ गुप्त धृत पाठ में शिवसिंह–लखिमा है।

केवल नृप पुरुषोत्तम के नाम हैं। जयादेवी के गर्भ से "हरिनारायण" भैरवेन्द्र को पुरुषोत्तम नामक एक पुत्र हुआ था। इस "राजाधिराज पुरुषोत्तमदेव" की माता जयादेवी के अनुरोध से महामहोपाध्याय वाचस्पति मिश्र ने "द्वैत निर्णय[1]" की रचना की थी। गजसिंह द्वारा सकेतित नृप यही पुरुषोत्तम हो सकते हैं।

गोविन्ददास

रागतरंगिणी मे क्रमशः गोविन्द एवं गोविन्ददास की भनिताओं से दो पद हैं।[2] दोनों ही पदों में कंसनारायण-सोरमदेवी का उल्लेख है। इस कंसनारायण का "रूपनारायण"—रामभद्र का पुत्र लक्ष्मीनाथ होना असम्भव नहीं है। पहले पदसे बंगला छन्द का स्पन्दन अनुभूत होता है। सुतरां, बंगाली कवि होने का दावा एकदम से उड़ादेने से नहीं चलेगा। सोलहवीं शताब्दी के शेषार्द्ध मे, उत्तरबंग में कंसनारायण नामक एक जमीन्दार थे। किन्तु किसी भी बंगाली पदकर्त्ता ने भनिता मे राजा के साथ रानी का नाम नहीं दिया है।

कंसनारायण

इस भनिता से रागतरंगिणी में[3] दो पद हैं और एक पद नगेन्द्रनाथ गुप्त के संकलन में है।[4] रागतरंगिणी का पहला पद, कीर्त्तनानन्द में विद्यापति की भनिता से है। दूसरे पद की भनिता में थोड़ा-बहुत गोलमाल है—

१. मित्र १७५। २. पृ० १०८, १०९ (गुप्त ५९३ विद्यापति की भनिता से)। ३. पृ० ७७,९७। ४. ४७९।

सुमुखि-समाद समादरें समदल
नसिरासाह सुरताने
नसिराभूपति सोरमदेई-पति—
कंसनरायन भाने ॥

यह पद क्या पूर्वोक्त गोविन्ददास की रचना है ?

जीवनाथ

इनका एक पद रागतरंगिणी में है।[१] इस भनिता से एक और पद मिथिलागीत-संग्रह में है।[२] प्रथम पद की भनिता में "मेधादेइ-पति रूपनारायण"—का उल्लेख है। इस "रूपनारायण" का रामभद्र भी होना सम्भव है।

अमियकर

रागतरंगिणी में उद्धृत "अमिअकर" की भनिता के पद मे[३] "रूपनारायण" शिवसिंह और लखिमादेवी का उल्लेख है। ग्रीयर्सन के संकलन में[४] लखिमादेवी की जगह "प्राणवती" है। नगेन्द्रनाथ के संकलन में[५] "अमियकर" के बदले "सुकवि भनथि" पाते हैं।

धरणीधर

रागतरंगिणी में इनकी भनिता से दिया गया पद[६] "मोरङ्गिया कोड़ार" रागिणी के उदाहरणस्वरूप उद्धृत हुआ है। मालूम होता है कि कवि नेपाल तराई के अधिवासी थे।

---

१. पृ० १११–१२। २. द्वितीय भाग पद संख्या ४१। ३. पृ० ८४। ४. ३७। ५. ३१७। ६. पृ० ९८ (गुप्त ७९२ विद्यापति की भनिता से)

भवानीनाथ

इनका केवल एक पद रागतरंगिणी[1] में उद्धृत हुआ है। भनिता में "नृप-देव"—का उल्लेख है,

भवानीनाथ हेन भाने
नृप-देव जत रस जाने……

नगेन्द्रनाथ के संकलन में, भनिता का इस रूप मे परिवर्त्तन हुआ है,

कवि विद्यापति भाने
नृप सिवसिंघ रस जाने……

यह पद राधा कृष्ण के नौका विलास का है। छन्द से नवीनता है। भाषा पर बंगला की छाया पाते हैं।

प्रीतिनाथ

"नृप" प्रीतिनाथ की भनिता से पद, रागतरंगिणी मे पाया गया है।[2] नगेन्द्रनाथ गुप्त ने इसे विद्यापति के नाम से प्रचलित कर दिया है।[3]

कवि—कुमुदी

इनका पद भी रागतरंगिणी मे मिलता है।[4] एवं नगेन्द्रनाथ द्वारा विद्यापति की भनिता मे परिवर्त्तित हो गया है।[5]

लखिमीनाथ

नगेन्द्रनाथ गुप्त के संकलन में इस भनिता से एक पद है।[6] इन्हें "कंसनारायण" लक्ष्मीनाथ मानने का कोई कारण नहीं है।

---

१. पृ० ९५ (गुप्त १२६ विद्यापति की भनिता से)। २. पृ० ८०। ३. ६४२। ४. पृ ६७। ५. ६४१। ६. १६३।

नेपाल एवं मोरङ्ग में (अर्थात् नेपाल की तराई में) बंगाली कवि-पण्डितों का आवागमन बहुत दिनों से ही था। यह देश बंगाली बौद्धों का भी प्रधान आश्रय-स्थल था। बंगाली द्वारा लिखित सबसे प्राचीन पुस्तक जो महाकाल के ग्रास से बचकर आयी है वह नेपाल में ही थी। बारहवीं शताब्दी में, नेपाल में, बंगालियों की संख्या कम नहीं थी। ३१३ नेपाली संवत् में (=११९३) "राजाधिराज-परमेश्वर श्रीलक्ष्मीकामदेवस्य विजयराज्ये" नेपाल में बसे बंगाली पण्डित द्वारा बंगाक्षर में लिखित 'नागानन्द' नाटक की प्रति नेपाल दरबार के ग्रन्थागार में रक्षित है। तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में नेपाल के मल्ल राजवंश के गुरु बंगाली ब्राह्मण थे। चौदहवीं शताब्दी के मध्य में जो राजगुरु थे उनका नाम रामदास था। इनके ज्येष्ठ पुत्र धर्मगुप्त "परमराजकवि" थे। धर्मगुप्त अपने पिता के सम्बन्ध में कहते हैं,

> विख्यातो जगतीतले स जयति श्री कण्ठपूजापरो
> नेपालावनिपालमण्डल गुरुः श्री रामदासः [कृति]...

पिता ने पुत्र को यत्नपूर्वक शिक्षा दी थी। इस विषय को धर्मगुप्त ने अपनी एक नाट्य रचना के उपसंहार में कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया है।

> पित्रा पुत्रकृपापरेण निपुणं शास्त्रान्वयं शिक्षित
> एतां भावरसोज्ज्वलां स कृतवान् रामाङ्कितां नाटिकाम् ॥

राजकवि धर्मगुप्त "वालवागीश्वर" वा "वालसरस्वती" के नाम से ख्यात थे।[1] इनके द्वारा लिखित दो नाटक पाये गये हैं। इनमें "रामाङ्कनाटिका" पहली रचना मालूम पड़ती है।[2] नाटिका पहली बार ललितापुर (ललितापतन वा पाटन) में अभिनीत हुई थी। प्रस्तावना की गणेश वन्दना में यह कथा है,

> मणिनागशिरोमणिदीधितिभी–
> रुचिरं सुकृताढ्तया त्रयते।
> ललितापुरमेतद्दिहारतो
> गणनाथ विनाशय विघ्नगणम् ॥

दूसरी रचना है—"रामायण नाटक"[3]। "श्री मतो भगवतो गोपालेश्वरश्याराधन परायणेन श्री शिखरनारायण चरणसेवकेन श्री झङ्केश्वरी तत्परेण सुरकीकुल कमल–कानन विकाशनैक भास्करेण...श्री मता जययूथसिंहदेवेन" आदेश पाकर हरिशंकर रथयात्रा महोत्सव के प्रसङ्ग विभिन्न दिशाओं से आगत सभासदवर्ग के विनोद के लिये "तत्र

मिथिला के अन्तिम स्वाधीन राजा कर्णाटवंशीय हरिसिंहदेव की सभा में अन्यतः दो नाटककारों को पाते हैं, ज्योतिरीश्वर एवं उमापति।

---

१. रामाङ्क नाटिका पोथी के अन्त में हैं,—

> "तेनैव धर्मगुप्तेन श्रीमता रामदासिना।
> वालवागीश्वरेणेयं लिखिता रामाङ्कनाटिका"।

२. केम्ब्रिज पोथी, अतिरिक्त १४०७ (वेण्डल का विवरण)।

3. लिपिकाल एवं रचनाकाल–नेपाल संवत् ४८० (=१३६०)।

"कविशेखराचार्य" ज्योतिरीश्वर ने 'धूर्तसमागम'[१] प्रहसन की रचना की थी। प्रारम्भ में ही सुलतान विजयी हरसिंहदेव की प्रशस्ति है,

नानायोधनिरुद्धनिर्जित सुरत्राणत्रसद्वाहिनी—
नृत्यद्भीमकवन्धमेलकदलद्भूमिभ्रमद्भूधरः ।
अस्ति श्री हरसिंहदेवनृपतिः कर्णाटचूड़ामणि-
र्द्रप्यत पार्थिव सार्थ मौलिमुकुटैन्यस्ताङ्घ्रिपङ्केरुहः ॥

ज्योतिरीश्वर का 'वर्णरत्नाकर' मैथिली भाषाका सबसे प्राचीन ग्रन्थ है जो गद्य मे लिखित है।[२]

"महामहोपाध्याय कवि पण्डित मुख्य" उमापति उपाध्याय ने उस समय मे प्रचलित भाषागीति-संवलित नाट्यरचना के आदर्श पर 'पारिजात मङ्गल' अथवा 'पारिजातहरण-नाटक'[३] की रचना "यवनवनच्छेदन कराल करवाल" "विच्छेदगतचतुर्वेद पथ-प्रकाश" भगवान श्री विष्णु के "दशमावतार", "हिन्दूपति" हरसिंहदेव के आमन्त्रण पर समागत भूपालमण्डल के वीर रसावेश शमन के उद्देश्य से की थी। पारिजात मङ्गल मे मैथिली के इक्कीश पद हैं। जयदेव की पदावली की भाँति ये भी नाट्यरचना के सर्वस्व हैं।

पूर्व-पश्चिम से सम्मिलित मुसलमान् शक्तिके आक्रमण को बार-बार

---

१. ग ५३४०,५३४१।

२. श्रीयुक्त बबुआ मिश्र ओ श्रीयक्त सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय सम्पादित एवं एसियाटिक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित (१९४१)

३. मिथिला में मुद्रित। बिहार-उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी की पत्रिका के तृतीय खण्ड में ग्रीयर्सन द्वारा प्रकाशित।

व्यर्थकर अन्तमे पराजित हो, हरसिंहदेव को मिथिला छोड़कर अपने राज्य के उत्तर भागमें, मोरङ्ग में आश्रय लेना पड़ा था। यह घटना १२४५ (=१३२३-२४) ("वाणाब्धि-युग्म-शशी," "वाणाब्धिमास") में घटीथी।[१] हरसिंहदेव के उत्तरीय प्रदेश में आ जाने पर नेपाल-मोरङ्ग में नाट्यगीति एवं पदावली की चर्चा चल पड़ी थी। हरसिंहदेव की पौत्री, जगतसिंह को कन्या[२] राजल्लदेवी का विवाह नेपाल के युवराज जयस्थितिमल्ल के साथ ४७४ नेपाल-संवत् (=१३५४) में हुआ था। जयस्थितिमल्ल के सभाकवि "नाट्यवेदविशारद" राजवर्द्धन के पुत्र मणिक[३] ने राजा के आदेश से 'अभिनव राघवानन्द[४]' तथा 'भैरवानन्द'[५] के नाम से दो नाटकों का प्रणयन किया था। अभिनव राघवानन्द नाटक का विषय रामकथा है। रचना का उपलक्ष्य था जयस्थितिमल्लदेव के ज्येष्ठपुत्र कुमार जयधर्ममल्ल का "रघुकुलोचित व्रतभंग महोत्सव प्रसंग"। भैरवानन्दनाटक का विषय पुराण के अनुकरण पर एक रोमान्टिक कहानी है। इसे राजकुमार के विवाह के उपलक्ष्य में लिखा गया था।

१. इ ७७७५। जर्मन प्राच्य परिषद की पोथी (पिशेल का विवरण)

२. नेपाल-दरबार की प्राचीन 'वंशावली' पुस्तक में कर्णाटवंशज तिरहुतिया जगतसिंह कुमार का उल्लेख है। पारिजात मङ्गल के दो पदों की भनिताओं में हरसिंह की पट्टमहादेवी का 'जगमाता' कहकर उल्लेख हुआ है।

३. पूरा नाम मालूम होता है मणिवर्द्धन था।

४. केम्ब्रिज पोथी. अतिरिक्त १६५८ (वेन्डल का विवरण)

५. नेपाल दरबार की पोथी।

चन्दनबर्मा के पुत्र, जयस्थितिमल्लदेव के मन्त्री, जयत बर्मा के लिये मणिक ने मानवन्यायशास्त्र का अनुवाद ५०० नेपाल संवत में नेपाल की भाषा नेवारी में किया था।[1] यही जयत क्या नेपाल में लिखित 'महीरावणवध' नामक जो सबसे प्राचीन नाटक पाया गया है, उसके रचयिता हैं? जयारिमल्लदेव के राज्यकाल ४५७ नेपाली संवत (=१३३७) में यह नाटक लिखा गया था। यह पुस्तक भी उसी समय की है। कवि उस समय तरुण थे और तब तक राजसभा में स्थान नहीं गया था। महीरावणवध रचना के उद्योक्ता "महापात्र" (अर्थात् राजसभासद्) जयसिंहमल्ल बर्मा थे। पुस्तक की प्रतिलिपि महापात्र ने स्वयं की थी, "श्री जयसीह मल्ल वर्मणैः सत्वार्थ हेतुना स्वहस्तेन लिखितम्"। "उत्तर बिहार महापात्र" का यह साहित्य प्रेम प्रशंसनीय है।

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में जययक्षमल्लदेव की मृत्यु के बाद उनके राज्य का उनके तीनों पुत्रों के बीच बँटवारा हुआ था। ज्येष्ठ पुत्र प्राचीन राजधानी भातगाँव (भक्तपत्तन वा भक्तपुरी) में राज्य करते रहे। दोनों छोटे भाइयों ने क्रमशः काठमाण्डू एवं बनेपा में राजधानी बनायी। बनेपा में, जयरणमल्लदेव का अनुसरणकर परवर्त्ती एकाधिक राजाओं ने अपने-अपने नाम से नाटकों को प्रचलित कराया था। जयरणमल्ल के 'पाण्डवविजय' नाटक में उनकी महिषी नाथल्लदेवी एवं पुत्र विजयमल्ल के नाम हैं।

उमापति उपाध्याय की तरह विद्यापति ने भी सम्भवतः संगीतनाटक की रचना की थी। 'मणिमञ्जरी' नाटिका, 'गोरक्षविजय, नाटक विद्या-

---

१. नेपाल दरबार की पोथी।

पति रचित है, ऐसी अनेक की धारणा है। पहली पुस्तक का पता नहीं चलता है, दूसरी की, नेपाल में प्राप्त प्रति के एक पृष्ठ की प्रतिलिपि तीन-चार वर्ष पहले देखने को मिली थी। परन्तु सम्पूर्ण पोथी को देखे बिना कुछ नहीं कहा जा सकता है। मीननाथ-गोरक्षनाथ की कहानी को लेकर १७वीं-१८वीं शताब्दी में नेपाल में नाटक लिखे गये थे।

इस प्रसंग में 'माधवानलकथा' का उल्लेख अपेक्षित है। संस्कृत-प्राकृत अपभ्रंश भाषाओं में, गद्य-पद्य में लिखित यह छोटा रोमान्टिक काव्य एकाधिक कवियों के नाम से पाया गया है। एक प्रति की केवल पुष्पिका में "इति श्री विद्यापति विरचिता माधवानल कथा समाप्ता" पाते हैं।[१]

इस पुस्तक के सारे संस्कृत एवं प्राकृत श्लोक, आनन्दवर्धन रचित माधवानल-कामकन्दला काव्य में हैं। रचना के बीच में विद्यापति का नाम अथवा स्वतन्त्र रचना, कुछ भी नहीं है। सुतरां, इसे विद्यापति की रचना मानना गलत होगा।

विद्यापति ने जो एक प्रहसन (अथवा कृष्णलीला नाटिका) की रचना की थी उसका प्रमाण है। नगेन्द्रनाथ गुप्त के संकलन में एक पद है[२] जो जान पड़ता है कि इसी प्रकार की किसी पाठ्य रचना के अन्तर्गत था। उस समय के एक प्रकार के नाट्यगीत में पात्र-पात्री

१. ग १०४६०। लिपिकाल संवत् १८१० शकाब्द १६७५ (= १७५३)।

२. "नाना प्रकार" १५।

रंगभूमि में पहली बार प्रवेश करने पर गीत गाकर नहीं अपितु श्लोक पढ़कर दर्शक श्रोताओं के समक्ष अपनी—अपनी भूमिकाओं का परिचय देते थे।[1] जैसे, सिंधिनरसिंहदेव के आदेश से लिखित हरिश्चन्द्र-नाट[2] में कालिकादेवी की बन्दना के उपरान्त नाट्यमञ्च पर पात्र-पात्रियों का बारी-बारी से इस प्रकार आविर्भाव होता है,

हरिश्चन्द्र ॥ समस्त पृथ्वीपतिरग्रगन्ता
युद्धे धने श्री दशमोहतिदाता।
गुणेनवाचा यशसाद्वितीयः
सोऽहं हरिश्चन्द्र इहागतोस्मि ॥

मदनावती ॥ प्रोत्फुल्ल पद्मायत पत्र नेत्रा
सुवर्णवर्णा शरदिन्दु वक्त्रा।
रूपैरुदार्येऽरुपमान बाह्या
तव प्रियाहं मदनेति नाम्ना ॥

रोहिदास ॥ हृदयविराजित तरलित हारः
शीलयुतः कृतनीति विचारः।
रोहिदास इति विदित कुमारः
सोऽहं बालः तनुसुकुमारः ॥

विश्वामित्र ॥ दण्डकमण्डलु मण्डित हस्तः
सुललित तिलक विभूषितमस्तः।

---

१. भारतचन्द्रराय की अपूर्ण अन्तिम रचना चण्डी नाटक में भी इसी प्रकार देखते हैं।

२. जर्मन प्राच्य परिषद की पोथी (पिशेल का विवरण)।

कौशिक मुनिरहमपगत लोभ-
श्चेलकाषाय पटापित शोभः[1] ॥

सत्तरहवीं शताब्दी के मध्यभाग में लिखित सरसराम की आनन्द विजय नाटिका[2] में भी यही रूप पाते हैं। विद्यापति का यह पद भी रंग-मंच पर प्रथम आविर्भूत कुट्टिनी (कृष्णलीला में जरती बड़ाइ की तरह) की उक्ति जैसा प्रतीत होता है,

हमे धनि कुटनि परिणति नारी
बैसहु वास न कहों विचारि।
काहुके पान काहु दिअ सान
कत न हकारि कएल अपमान।
कथ परमाद धिया मोर भेल
आहे यौवन कतय चल गेल।
भाङ्गल कपोल अलक भार साजु
सङ्कुल नयने काजर राजु।
धवला केस कुसुम करु वास
अधिक सिङ्गारे अधिक उपहास।
थोथर थैया थन दुओ भेल
गरुअ नितम्ब कहाँ चल गेल।
जौवन सेस सुखायल अङ्ग
पाछु हेरि विलुलइते उमत अनङ्ग।

---

१. पाठ "श्चलकाषायवटार्पितशोभः"।

२. दरभंगा, राजप्रेस में मुद्रित (१३३३ साल)

खने खन घोघट विघट समाज
खने खने अब हकारलि लाज।
भनहि विद्यापति रस नहि छेओ
हासिनि देइ-पति देवसिंघ देओ।

रागतरङ्गिणी में उद्धृत कालिका-वन्दना का पद भी[1] विद्यापति की किसी नाट्यरचना की प्रारम्भिक गीति मालूम पड़ता है। पद तो निस्सन्देह विद्यापति का है क्योंकि भनिता में "हॉसिनि देइ-पति गरुड़-नारायण देवसिंह नरपति" का उल्लेख है। कवि भीष्म के जिन दो पदों में[2] जगनारायण-प्रभावती देवी के नाम हैं, वे दोनों उर्वशीपुरुरवा के उपाख्यान का अवलम्बन कर, इनके द्वारा रचित किसी नाटक से लिया गया जान पड़ता है।

उमापति उपाध्याय के पारिजात मङ्गल के पदों से ही मैथिली कविता की धारा प्रवाहित हुई है। इसके पहले भी किसी-किसी कवि ने निश्चय ही पद लिखा था। उमापति की पदावली के दोषहीन गठन से यह अनुमान होता है कि यह सब कोइ पहला प्रयास नहीं है। पहले से पद रचना की परम्परा न होने से ऐसी रचना नहीं हो सकती है। तब इस प्रकार के किसी पद का चिह्न अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है। जयदेव कृत गीतगोविन्द की चर्चा मिथिला में खूब जोरों से चलती थी। राधा कृष्ण विलास गीति को छोड़कर भी आदि रस विषयक आलोचना तत्कालीन मिथिला में मुखर थी। रतिशास्त्र की कतिपय

१. पृ ८९-९० (गुप्त "हरगौरी" १)। २. पृ ४३-४४, ५७-५८।

प्रसिद्ध पुस्तकें—पद्मश्रीज्ञान[1] का 'नागर सर्वस्व', भानुदत्त की 'रसमञ्जरी ज्योतिरीश्वर का 'पञ्चशायक', जगद्धर का 'रसिक सर्वस्व'—तीरभुक्ति में ही लिखी गयीं। आदिरस बहुल अनेक प्रहसन भी तीरभुक्ति के कवि पण्डितों द्वारा रचित हैं। जैसे, ज्योतिरीश्वर कृत 'धूर्त्त समागम' अमरेश्वर कृत 'धूर्तविडम्बन'[2], 'कविराजशेखर' शङ्खधर रचित 'लटक-मेलक'[3]। अतः आदिरस का आनुषङ्गिक कहकर राधाकृष्ण पदावली भी यहाँ बहुत पहले पुष्पित एवं फलित हुई थी। भक्तिरस का प्राबल्य हरगौरी पदावली में था।

---

१. दीपङ्कर श्री ज्ञान, पद्मश्रीज्ञान इत्यादि नामों में सभी 'श्रीज्ञान' को उपाधि होनेका अनुमान करते हैं। किन्तु सो नहीं है, ज्ञान, उपाधि है (तुलनीय आधुनिक पदवी "जाना") और दीपङ्कर श्री, पद्मश्री नाम है। तुलनीय, मञ्जुश्री, अशोक श्री-मित्र, करुणाश्री मित्र इत्यादि।

२. ग ८२३५। कवि, किसी महेन्द्रनाथ (?) नृपति के पुरोहित थे ("पौरोहित्यम्वाप्य नाथ नृपतेः क्षौणीमहेन्द्रस्ययः")। पिता ध्यानेश्वर ने भी कई नाटकों की रचना की थी ("योऽसौ नाटक नाटिका प्रकरण व्यायोगनिर्माणम्:")। पितामह धर्मेश्वर ने शास्त्र विचार में उत्कल के राजा वीर नृसिंहदेव को पराजित किया था। कवि का निवास तीरभुक्ति के हरिहसन गाँव में था। प्रहसन की रचना कवि ने "आत्मनो विनोदार्थम्" की थी।

३. ग ८२३४।

पारिजात मङ्गल के अतिरिक्त भी उमापति की भनिता से दो–एक पद आधुनिक संग्रह ग्रन्थों में मिलते हैं। ये सब देवी वन्दना के पदहैं।[1]

उमापति के कुछ पद विद्यापति के नामपर प्रचलित हो गये हैं। परन्तु इनकी संख्या कितनी है सो बताना कठिन है। दोनों ही के नाम चार अक्षरों के हैं, अंतिम दोनों अक्षरों में भी समता है। अतः भनिता परिवर्त्तन सहज ही हो गया होगा।

---

१. मैथिल भक्त प्रकाश (दरभंगा १९२२) पृ १४-१५।

८

हरसिंहदेव के बाद से मोरङ्ग अर्थात् नेपाल-तराई में, विशुद्ध मैथिली एवं व्रजबुलि भाषा में गीतिरचना की परम्परा धारावाहिक रूप में चली आ रही थी। यहाँ से ही नेपाल की राजसभा में मैथिली-व्रजबुलि-बङ्गला पदावली रचना की परम्परा प्रवर्त्तित हुई थी।

रागतरङ्गिणी में "लछमिनरायन नृप" की भनिता से एक पद है।[1] इनके मोरङ्गराज लक्ष्मीनारायण होने का अनुमान होता है। मोरङ्ग के राजा त्रिविक्रम के सभापण्डित मुरारिमिश्र ने अपने 'शुभकर्मनिर्णय'[2] के उपक्रम में यह मोरङ्ग राजवंशानुक्रम दिया है,

लक्ष्मीनारायण
|
रूपनारायण
|
वीरनारायण
|
नरनारायण
|
जगत्नारायण
|
त्रिविक्रम

१. पृ ६५ (गुप्त ७२९ विद्यापति की भनिता से)

२. मित्र १९८७। मैथिल पोथी, लिपिकाल लक्ष्मण संवत् ५८४ (=१७०३)

लक्ष्मीनारायण की प्रशंसा करते मुरारी ने लिखा है—

दुष्टानामेकशास्ता हरिचरणपरः पौरवर्गस्य पाता
बैरिश्रेणीनिहस्ता द्युतिजितमदनः शीघ्रभूरिप्रदाता।
विश्वव्यापिप्रतापस्त्रियजगति विदिते चारुमोरङ्गदेशे[1]
लक्ष्मीनारायणाख्यः समभवदवनी पालमालावतंसः॥

अर्थात् जो दुष्टों के एकमात्र शास्तिदाता, हरिचरणपरायण, प्रजा-पालनकारी एवं बैरी समूह हननकारी हैं, जिनकी शारीरिक कान्ति काम-देव को पराजित करती है, जो शीघ्र एवं प्रचुरदान करते हैं, जिनका प्रताप विश्वव्यापी है; इस प्रकार के लक्ष्मीनारायण राजवृन्दचूड़ामणि, त्रिभुवन में विख्यात सुन्दर मोरङ्ग देश में हुये थे।

मुरारि का जीवनकाल सत्तरहवीं शताब्दी से पूर्व ही है। अतः लक्ष्मीनारायण के राज्यकाल की निम्नतम सीमा सोलहवीं शताब्दी का प्रथम चरण होगी।

एक "कवि डिण्डिम" लक्ष्मीदत्त ने पाण्डवचरित' महाकाव्य'[2] लिखा था। ये "श्री श्री मल्लक्ष्मीनारायणराजपण्डित" थे। यह लक्ष्मीनारायण मोरङ्गराज हो सकते हैं। लक्ष्मीदत्त का पूरा नाम यदि लक्ष्मीनाथदत्त हो तब लक्ष्मीनाथ की भनिता के पद[3] इन्हीं की रचना हो सकती है।

यदि रूपनारायण की भनिता से युक्त पद हों तो वे शिवसिंह-रूप-

१. मुद्रित पाठ "चारु + बंगदेशे"।

२. मित्र २००४। मैथिल पोथी।

३. गुप्त १६३।

नारायण के पदों के साथ मिश्रित हो गये हैं। रूपनारायण–मेघादेवी का जिन पदों में उल्लेख हुआ है[1] वे पद, सम्भव है कि इस राजसभा के कवि जीवनाथ की रचना हो।

मालूम पड़ता है कि वीरनारायण का विरुद "कंसदलन"[2] वा "सिंहदलन" था। विद्यापति की भनिता से युक्त एक पद में "कंसदलन नारायण" का उल्लेख है।[3] तब यहाँ कवि का उद्देश्य श्रीकृष्ण से है। इनके सभाकवि "चतुर" चतुर्भुज की भनिता से युक्त एक पद रागतरङ्गिणी में है।[4] नगेन्द्रनाथ गुप्त के संकलन में एक और पद है।[5]

नरनारायण एवं जगत्नारायण, इन दोनों पिता-पुत्र के सभाकवि 'कुमार' भीष्म थे। रागतरङ्गिणी में इनके तीन पद हैं। एक पद[6]

---

१. रागतरङ्गिणी पृ० १११—१२।

२. इनके सभाकवि चतुर्भुज ने 'गीतगोपाल' काव्य की रचना की थी, जिसमे उन्होंने लिखा है कि पोषक राजा को जहाँगीर द्वारा "सिंहदलनराय" की उपाधि मिली थी। बङ्गाक्षर में, ४८९ संवत् (=१६१८) में लिखित गीतगोपाल की प्रति नेपाल दरबार के संग्रह में है। यह काव्य गीतगोविन्दके अनुकरण पर लिखित है।

३. रागतरङ्गिणी पृ० ८५–८६ (गुप्त १४)।

४. ऐ पृ० १००।

५. "प्रहेलिका" २०।

६. पृ ६९

में नरनारायण-धरमादेइ का उल्लेख है, दो पदों में[1] "मोरङ्ग महीपति" प्रभावतिदेइ-पति जगनारायण का नाम है।

त्रिबिक्रम "नृपति" का उल्लेख गदाधर के एक पद में पाते हैं। यह देवीवन्दना का पद है जो रागतरङ्गिणी में संकलित है।[2]

रागतरङ्गिणी में "रसमय" श्यामसुन्दर की भनिता से जो पद है[3] उसमें उल्लिखित कमलावती-पति कृष्णनारायण मोरङ्ग के राजवंशी हो सकते हैं।

---

१. पृ ४३-४४, ५७-५८। दूसरा पद नगेन्द्रनाथ गुप्त के संकलन में ("नानाप्रकार"[3]) विद्यापति-लखिमादेइ-शिवसिंह की भनिता से है।

२. पृ ७८।

३. पृ ११५।

६

नेपाल में मैथिली एवं बंगला गीतिकविता का प्रवेश १४ वीं शताब्दी में हरसिंहदेव के माध्यम से हुआ था। इस प्रकार के पद पहले नाट्यगीति के लिये रचे गये, बाद में पदावली के रूप में भी रचे जाने लगे। नेपाल की राजसभा में पदावली चर्चा का इतिहास सोलहवीं शताब्दी के मध्यभाग से लेकर अठारहवीं शताब्दी के मध्यभाग तक अविच्छिन्न रूप से पाते हैं। मल्लवंश का राज्यलोप होने पर यह धारा लुप्त हो जाती है। मेरा अनुमान है कि मोरङ्ग—नेपाल की राज्यसभा के प्रभाव से, बंगला—मैथिली पदावली के मिश्रण एवं अवहट्ठ के ठाठ से ब्रजबुलि की उत्पत्ति हुई थी।

भातगाँव के त्रैलोक्यमल्ल के राज्यकाल में (१६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में) लिखित कृष्णलीला नामक एक नाटक में बंगला एवं मैथिली में रचित कतिपय पद हैं। कई पदों में कवि की भनिता रामभद्र एवं वीरनारायण पायी जाती है। भनिताहीन इस पद[1] की भाषा बंगला है जो अनिवार्य विकृति के बावजूद अच्छी तरह मालूम पड़ती है—

सघन बरिसे मेहा
सुमरि सुबन्धु-नेहा[2]

---

१. श्रीयुक्त प्रबोधचन्द्र बागची का "नेपाले भाषानाटक" (साहित्य परिषत् पत्रिका षट्त्रिंश भाग) प्रबन्ध में उद्धृत।

२. मुद्रित पाठ "महा"।

जीव चुटपुट नीद न आए[1] विरह दगध-देहा।
मन पंचि हया जावो
जाहा गिया [लाग] पायिवो
हाते धरिया पाय पड़िया गलाय[2] तुलिया लयिवो।
चन्दन चिर न भाए[3]
कुसुम साज सुखाए[4]
अङ्ग मोड़ि मोड़ि[5] आङ्गन ठाड़[6] मन चौदिक धाए[7] ॥

ललितापुर (पाटन) शाखा के श्री निवासमल्लदेव की सभा में रामभद्र नामक एक कवि को पाते हैं। वे यदि यही रामभद्र हों तो नाटक त्रैलोक्यमल्लदेव के राज्यकाल में लिखा गया था।

त्रैलोक्यमल्ल के पुत्र जगज्जोतिमल्लदेव ने (राज्यकाल १६ वीं शताब्दी का अन्त एवं १७ वीं शताब्दी का प्रारम्भ) संस्कृत एवं देशी साहित्य का भरपूर पोषण किया था। इनके नाम से बहुत सारी गीतिकवितायें[8] तीन-चार भाषा-नाटक, संगीतशास्त्र का अनुवाद एवं टीका ग्रन्थ[9] एवं

---

१. ऐ "आवे" २. ऐ "गला" ३. ऐ "चिरण भावे" ४. ऐ "सोहावे" ५. ऐ "मोरि मोरि" ६. ऐ "ठारि" ७. ऐ "धावे"।

८. 'गीतपंचासिका' (नेपाल दरबार की पोथी) रचनाकाल "ख-शर-तिथि" (१५५०) शकाब्द (=१६२८)।

९. 'सगीतचन्द्र' का अनुवाद (नेपाल दरबार की पोथी)। मूल प्रति 'दूरात दक्षिणदेशतः' लायी गयी थी, १६२९ खीष्टाब्द में ("याते नेपालिकाब्दे रसयुगमुनिभिः") एवं

श्री मच्छ्रीजगज्ज्योतिर्मल्लभूपतितुष्टये।
सिंहदेवसुतेनायं शिवेन लिखितो मुदा॥

'नागसर्वस्व' की टीका (नेपाल दरबार की पोथी)।

अन्यान्य निबन्ध[१] प्राप्त हुये हैं। 'हरगौरी विवाह' नाटक[२] की रचना ७४६ नेपाल-संवत् (=१६२६) में हुई थी। इसमें पचपन पद हैं। 'मुदित कुवलयाश्य' नाटक[३] की रचना विल्पपञ्चाग्रामीण भारद्वाज गोत्रीय मैथिल कवि-पण्डित रामचन्द्रशर्मा एवं जयमती के पुत्र वंशमणि ओझा ने की थी। पदावली में एवं कथोपकथन में मैथिली एवं बंगला का व्यवहार है। कवि वंशमणि को पश्चात् प्रतापमल्ल की सभा में पाते हैं। जगज्ज्योतिमल्लदेव के नाम से दूसरी नाट्य रचना 'कुञ्जबिहारी—नाटक'[४] हुई। ऊपर जो बंगला का पद उद्धृत किया है वह इसी नाटक का प्रतीत होता है।

नेपाल राजवंश की तीनों शाखाओं के तीन समसामयिक राजाओं के बीच साहित्यचर्चा को लेकर जैसे स्पर्द्धा की भावना थी। भातगाँव के जगज्ज्योतिमल्लदेव के प्रतिस्पर्द्धी थे काठमाण्डू के प्रतापमल्लदेव एवं ललितापुर के सिद्धिनरसिंह देव। "कवीन्द्र" प्रतापमल्लदेव के नाम से अनेक ही रचनायें प्रचलित हैं। जैसे' 'वृष्टि चिन्तामणि',[५] 'अवलोकितेश्वर-

---

१. जैसे, ७४७ नेपाल-संवत में (=१६२७) दैवज्ञ नारायण सिंह संकलित 'श्लोक सार संग्रह' (नेपाल दरबार की पोथी।) 'नरपति जयचर्य्याटीका' (ऐ) इसका रचना एवं लिपिकाल १५३९ शकाब्द (=१३१७)।

२. केमब्रिज-पोथी अतिरिक्त १६९५।

३. जर्मन प्राच्य परिषद् की पोथी।

४. नेपाल दरबार की पोथी।

५. केमब्रिज पोथी अतिरक्त १४७२।

स्तवराज',[1] 'स्वयम्भूभट्टारकस्तोत्र',[2] 'अविद्याधरीगीतस्तव',[2] 'हरमेखलाटीका',[3] 'सङ्गीततारोदयचूरामणि'[3] इत्यादि ।

प्रतापमल्लदेव के तुलापुरुषदान-महोत्सव के उपलक्ष्य में १५७७ शकाब्द (१६६५) में वंशमणि ने 'गीत दिगम्बर'[3] नाटक लिखा था । वंशमणि ने 'हरकेलि'[4] नामक एक महाकाव्य की भी रचना की थी । इसमें कंसवध तक की कृष्णलीला का वर्णन हुआ है । वंशमणि ने एक और रचना की थी, 'चतुरङ्गतरङ्गिणी'[2] । इसे कृष्णानन्दराय के अनुरोध से लिखा गया था । ये क्या बङ्गाली थे ?

७७३ नेपाल-संवत (=१६३३) में लिखित एक पुस्तक की पुष्पिका में लेखक ने भातगाँव के जगज्जोतिमल्लदेव एवं ललितापुर के सिद्धिनरसिंहमल्लदेव, इन दो व्यक्तियों के नाम दिये हैं—"श्री भक्तापुरी महानगरया राजाधिराज श्री३जगज्ज्योतिर्मल्लदेवयातिक्रियासंग्रह........कालन्दव्यूहपुस्तकं ररितापुरिमहानगर्य्यां गरुड्ध्वजावतारे श्री३ सिद्धिनलसिंहमल्लदेव ॥ तस्य पुत्र बृषध्वजावतारं श्री३निवासमल्ल तस्य उभयराज्ये शुभं[5] ॥ इससे ज्ञात होता है कि सिद्धिनरसिंहमल्ल एवं निवासमल्लके विरुद क्रमशः "गरुड़ध्व जावतार" एवं "वृषध्वजावतार" थे ।

---

१ ग्रेटब्रिटेन की राएल एसियाटिक सोसाइटी की पुस्तक हजसन संग्रह ३० (काउयेल एगलिंग का विबरण) २ नेपाल दरवार की पोथी ।
३ केमब्रिज पोथी, अतिरिक्त १६४१ । रचनाकाल नेपाल-संवत ७८३ (=१६६३) । ४ ग ८१४८ । ५ केमब्रिज पोथी, अतिरिक्त १६८७ ।

सिद्धि नरसिंहदेव (मृत्यु १६५७) के राज्यकाल में 'गोपीचन्द्र नाटक'[१] एवं 'हरिश्चन्द्र नृत्य' (अर्थात् हरिश्चन्द्र-नाट) [२]की रचना हुई थी। हरिश्चन्द्र नाट के रचयिता रामभद्र के पिता का नाम शङ्कर था। सिद्धिनरसिंहमल्ल के पुत्र श्री निवासमल्लदेव के आदेश से कवि रामभद्र ने 'ललित कुवलयाश्वमदालसा-नाटक' (वा 'शिवपार्वतीमहिमानृत्य')[२] की रचना की थी। रचनाकाल एवं प्राप्त पुस्तक का लिपिकाल हरमुख-वसु-मुनि" (७८५) नेपाल-संवत (= १६६५) है। गोपीचन्द्र नाटक का प्रधान अंश पद्य मे है। उसकी भाषा बंगला है। पुरुषानुक्रम से नेपालवासी किसी बंगला कवि की रचना प्रतीत होती है।

रागतरङ्गिणी में[३] नेपाल-वराड़ी रागिणी के उदाहरण में "राज्ञः श्रीनिवासमल्लस्य" कहकर ये चार चरण उद्धृत हुये हैं,

उपमिअ आनन नीरज-पङ्कज शशधर दिवस मलीने
भौंह अनूपम अधर सोनाज्योन नवपल्लव रुचि जीने
सुन पेअसि की मोर परल गरु—[अ अपराधे]
बह मलयानिल जार कलेवर न कर मनोरथ-वाधे॥

भातगाँव के जितामित्रमल्लदेव के उद्योग से 'अश्वमेध-नाटक'[४] प्रभृति की रचना हुई थी। जितामित्रमल्ल के पश्चात उनके पुत्र भूपती-

---

१ केमब्रिज पोथी, अतिरिक्त १३८१। श्रीयुक्त सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय महाशय की अनुलिपि। बांगला साहित्येर इतिहास प्रथम खण्ड द्रष्टव्य। २. जर्मन प्राच्य परिषद की पोथी।

३ पृ ४८।४ नेपाल दरबार की पोथी। लिपिकाल एवं रचनाकाल नेपाल संवत ८१० (= १६९०)।

न्द्रमल्ल, अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राजा हुये थे। इन्होंने भी बहुत सारे नाटकों की रचना की थी। 'भैरवप्रादुर्भाव नाटक'[1] की रचना ८३३ नेपाल-संवत (= १७१३) में इनके आदेश से की गयी थी—"श्री श्री राजकुमारस्य उपनयनमहोत्सवे श्री श्री स्वेष्ठदेवताप्रीतिकामनया"। विद्यासुन्दर की कहानी को लेकर "द्विज" काशीनाथ ने "विद्याविलाप-नाटक"[2] लिखा था। दो को छोड़कर इसके सभी पदों में लालमती देवी–सुत, विश्वलक्ष्मीदेवी पति भूपतीन्द्र की भनिता है। इसका रचनाकाल एवं लिपिकाल नेपाल-संवत ८४० (= १७२०) है। "द्विज" कृष्णदेव के "महाभारत नाटक"[2] में भी एक को छोड़कर सारे पदों में भूपतीन्द्रमल्लदेव की भनिता है। कई पदों की भाषा पर बंगला की स्पष्ट छाप है। भूपतीन्द्र ने ८२५ नेपाल-संवत (= १७०५)[3] में या तो स्वयं ही एक पदावली का संकलन किया था अथवा किसी सभाकवि द्वारा कराया था। इसमें पदों की संख्या ३६ है।

भूपतीन्द्रमल्ल के पुत्र रणजितमल्लदेव भातगाँव के अन्तिम नेवारी राजा थे। साहित्य के ये बहुत बड़े पोषक थे। इनके सुदीर्घ राज्यकाल में अनेक नाट्यगीत लिखे गये थे। राजसभा मे केवल विशुद्ध नेपाली कवि नहीं थे, मैथिल एवं बङ्गाली कवि भी थे। 'माधवानल कामकन्दला नाटक', मैथिल कवि "द्विज" धनपति ने लिखा था। 'रामचरित नाटक'

---

१ ग्रेटब्रिटेन की एसियाटिक सोसाइटी की पोथी, हज्सन संग्रह ३६।

२ श्री युक्त ननीगोपाल बन्दोपाध्याय सङ्कलित 'नेपाले बाङ्गला नाटक' (१३२४)। ३ हज्सन-संग्रह ५३।

बङ्गाली कवि गणेश को रचना है।[1] यह ८८५ नेपाल-संवत (= १७६५) में लिखा गया था। इसके प्रायः सारे गीतों में रणजितमल्ल की भनिता पाते हैं।

"सङ्गीत विद्याकर" जगज्ज्योतिमल्लदेव के दौहित्र (?) अनन्तसिंह ने मातामह के समीप रहकर यत्नपूर्वक अध्ययन कर 'सङ्गीतशास्त्रार्णवपारग' हुये थे। इनके पुत्र पूर्णसिंह भी "सङ्गीते सकलेऽभवच्च निपुणस्तातप्रशिक्षा-बशात्"। पूर्णसिंह ने किसी "गौरीपतेः सुनु" के उपरोध से 'सङ्गीतसारार्णव'[2] की रचना की थी। रागतरङ्गिणी में "कविराज पूरनमल्ल" का जो गङ्गा-वन्दना पद है[3] उसे पूर्णसिंह की रचना होने का अनुमान होता है। मल्लराजवंश का दौहित्र होने के कारण ही इन्होंने पूर्णसिंह की जगह भनिता में पूर्णमल्ल किया होगा।

---

१. नेपाले बाङ्गला नाटक। २. नेपाल दरबार की पोथी।

३. पृ ५१—५२।

रागतरङ्गिणी में इन सभी कवियों के एक-एक पद हैं—चतुरानन[१], हरिदास[२], सदानन्द[३], "रसमय कवि" जयकृष्ण[४], मधुसूदन[५]। "सिंह भूपति की भनिता से दो पद हैं[६] और "नृपसिंह"[७] की भनिता से एक पद। "सिंह भूपति" नाम हो सकता है, यह नाम किसी "सिंह" भूपति का ही मालूम पड़ता है। पदकल्पतरु मे सिंहभूपति एवं भूपति की भनिता से कई पद हैं, एक में भूपतिनाथ है। यह नाम जैसा ही मालूम पड़ता है। ऐसा होने से क्या कवि (अथवा कवि के पोषक) का पूरा नाम भूपतिनाथ सिंह है? कई पदों में 'चम्पति' अथवा 'चम्पति-पति' की भनिता भी पायी जाती है। इन सभी पदों को नगेन्द्रनाथ ने विद्यापति का कहकर ग्रहण किया है।

"चन्द्रकला" की भनिता का पद[८] रागतरङ्गिणी मे "इति विद्यापति-पुत्रवध्वाः" कहकर, सुप्रिय रागिणी के उदाहरण स्वरूप उद्धृत हुआ है।

---

१ पृ ६१ (देवी वन्दना)। मिथिला गीत संग्रह के तृतीय भाग (३७) में चतुरानन भनिता से और एक पद है।

२ पृ ६१–६२ (शिव विषयक)। ३ पृ ११२ (देवी वन्दना)। ४ पृ ८७–८८। ५ पृ १०२। ६ पृ ६० (गुप्त ५९१), पृ ७४–७५ (गुप्त १७५)। ७ पृ ७३–७४ (गुप्त ९४)। ८ पृ ५३–५४।

पद, जयदेव की रचना की तरह दीर्घ-समास बहुल है। प्रायः मेल नहीं है। भनिता का चरण लघु छन्द का है।

"चन्द्रकला" कवि-भनिता है, ऐसा नहीं प्रतीत होता है, राधा की सखी का नाम होना सम्भव है। पद का प्रथम अंश कृष्ण की उक्ति है। शेष अंश सखी की उक्ति है,

चन्द्रकवि[1] जयदेव मुद्रित मान तेज तोहें राधिके
वचन मम धर कृष्ण अनुसर किन्तु कामकला शुभे।

चन्द्रकला हे वचन करसि
माननि माधव अनुसरसि॥

दरभंगा के वर्त्तमान राजवंश के प्रतिष्ठाता महेश ठाकुर के पौत्र सुन्दर ठाकुर के सभाकवि "कात्यायन गोत्र" "कुजौली नन्दन" सरसराम (वा राम) ने संस्कृत-प्राकृत में राधा-कृष्ण लीला विषयक एक नाटिका 'आनन्द विजय'[2] के नाम से लिखी थी। इसमें उनतीस मैथिली-पद हैं। भनिता में कवि ने राजा का उल्लेख किया है। कतिपय पदों में दो रानियों—कमलावती, प्राणवती के नाम हैं। लोचन की राग-तरङ्गिणी में इन पदों से एक भी उद्धृत नहीं है।

रागतरङ्गिणी संगीतविषयक ग्रंथ है जिसे लोचन ने महेश ठाकुर के पौत्र, सुन्दर ठाकुर के पुत्र महीनाथ ठाकुर के समय में उनके अनुज नरपति ठाकुर के आदेश से लिखा अथवा संकलित किया था। इसके संकलन का समय १७वीं शताब्दी का अंतिमचरण, सम्भवतः १६८५

---

१ अर्थात् कविचन्द्र। २ दरभंगा राजप्रेस में मुद्रित (१३३३)।

खीष्टाब्द है।[1] इसमें विभिन्न राग-रागिणी के उदाहरणस्वरूप बहुत से पद उद्धृत हुये हैं। ग्रन्थ का मूल वक्तव्य अर्थात् Text संस्कृत एवं हिन्दी दोहा में तथा कहीं कहीं मैथिली एवं हिन्दी कविता में है। दोहे किसी प्राचीन हिन्दी ग्रन्थ से लिये गये हैं क्योंकि इनकी भाषा पर स्थान-स्थान पर अवहट्ठ का प्रभाव है। उदाहरणस्वरूप दिये गये पदावली में लोचन द्वारा रचित आठ पद हैं जिनमें कई में सपत्नीक महीनाथ एवं नरपति का उल्लेख है। आधुनिक संग्रह मिथिला भक्तप्रकाश के एक भनिताहीन पद में महीनाथ-नरपति के नाम हैं।[2] 'रागसङ्गीत संग्रह' के नाम से एक और पुस्तक का संकलन लोचन ने किया था। रागतरंगिणी में इसका उल्लेख है।

रागतरंगिणी पाँच तरङ्गों में विभक्त है। तृतीय एवं चतुर्थ तरङ्ग सबसे बड़े हैं। पदावली इन्हीं दो तरंगों में "मिथिलाअपभ्रंश भाषया श्रीविद्यापतिकविनिवद्धास्तास्ता मैथिल गीतगतयः" प्रदर्शन के लिये उद्धृत हुये हैं।

विद्यापति के सम्बन्ध में लोचन कुछ नयी कथा कहते हैं।[3] शिवसिंह ने अपने प्रधान गायक जयत को विद्यापति के निकट—"कविशेखर विद्यापतये तु सन्यस्तः" उनकी पदावली का सुर निश्चित करने के लिये नियुक्त किया था। जयत कायस्थ था। पिता का नाम था, उदय। पितामह सुमति कलावान कथक था। जयत का पुत्र कृष्ण भी बहुत बड़ा गायक हुआ था। इन दोनों पिता-पुत्र के पश्चात् विद्यापति की पदावली का प्रसिद्ध गायक हरिहर मल्लिक हुआ था, फिर हरिहर का

१ प्राक्कथन द्रष्टव्य। २ पृ १२। ३ पृ ३७।

मझला पुत्र घनश्याम एवं पुनः घनश्याम के तीनों पुत्र लक्ष्मीराम, राघवराम एवं टीकाराम हुये।

नेपाल–मोरङ्ग की राजसभा में बङ्गाली कवि-पण्डितों की उपस्थिति १२ वीं शताब्दी से लेकर १८ वीं शताब्दी के मध्यभाग तक जो चली आती रही है उसका प्रमाण पहले ही दिया है। बङ्गला–मैथिली–अवहट्ठ एवं सम्भवतः नेवारी के मिश्रण से पदावली की जो विशिष्ट भाषा नेपाल–मोरङ्ग में उद्भूत हुई थी उसके विषय में भी कह दिया है। बङ्गाल में ब्रजबुलि की अलग से सृष्टि हुई थी अथवा वह नेपाल-मोरङ्ग–तिरहुत होकर आयी थी, उसके विषय में अभी तक ठीक-ठीक बोलने के साधन नहीं हैं। बंगाल में ब्रजबुलि कविता के प्रथम एवं श्रेष्ठ लेखक-गण प्रायः सभी वैद्य थे। बंगाली वैद्यगण भी जो पढ़ने के लिये मिथिला जाते थे, उसके प्रमाण उपलब्ध हुये हैं। नेपाल-दरबार के संग्रह में उदयन के न्याय तात्पर्य टीका की एक प्रति है। इसकी प्रति-लिपि १४१० शकाब्द अर्थात् १४८८ खीष्टाव्द में मिथिला में हुई थी—"सर्षप-ग्रामे महामहोपाध्याय–सन् मिश्र–श्रीमच्छङ्करांणांचौपाड्यां गौड़ी-याम्वष्ठ–श्रीमद्वासुदेवेन"। सुतरां मिथिला के साथ वैद्यपदकर्त्ताओं के सम्पर्क एकदम गौण नहीं थे।

तब आदान-प्रदान दोनों ही ओर से था। रागतरङ्गिणी में देशीय वराड़ी रागिणी के उदाहरण में कविशेखर की भनिता से जो पद[1] है

---

१ पृ ४४–४५। क्षणदा गीत चिन्तामणि में यही भनिता है। पद–कल्पतरु (१६७) में जो भनिता है वह स्पष्टतः अर्वाचीन है—"भनइ विद्यापति से वरनागर, राइ-रूप हेरि अन्तर गरगर॥"

उसे लोचन "इति विद्यापते:" कहते हैं। भनिता में नसरत्-शाह का उल्लेख है,

कविशेखर भन अपरुव रुप देखि
राए नसरद–साह भजलि कमलमुखि ॥

यह नसरत-साह बङ्गाल का सुलतान हुसेनशाह का पुत्र था एवं यह पद बङ्गाली कविशेखर का है।

रागतरङ्गिणी में भी उद्धृत किसी-किसी पद पर बङ्गला का प्रभाव है; जैसे,

नन्दक नन्दन, कदबेरि तरुतले, धिरेँ धिरेँ मुरलि बोलाव
समय सकेत–निकेतन बैसल, बेरि बेरि बोलि पठाव।
सामरी तोरा लागि अनुखन विकल मुरारि ।ध्रु।
यमुनाक तीर–उप–वन उदवेगल फिरि फिर पथहि[1] निहारि।
गोरस विकेँ निते अवइनेँ जाइतेँ जनि जनि पूछ वनवारि।
तोँहे मतिमान सुमति मधुसूदन वचन सुनह किछु मोरा
भनइ विद्यापति सुन वरजौवति वन्दह नन्द किशोरा ॥[2]

यह पद मैथिल विद्यापति का नहीं है। बङ्गाली विद्यापति का है या नहीं, सो कह नही सकता, तब कविता का मूल रूप निस्सन्देह बङ्गाली की रचना है।

नगेन्द्रनाथ गुप्त (३४) ने पदकल्पतरु का ही विकृत पाठ लिया है।

१ मुद्रित पाठ "ततहि"। २ पृ ४७।

विद्यापति-भनिता से एक और पद[1] के प्रथम चार चरणों को उद्धृत करता हूँ। इसमें भी बङ्गला का प्रभाव लक्ष्य किया जा सकता है,

चलचल सुन्दरि शुभकर आज
ततमत करइतें नहिँ होए काज।
गुरुजन-परिजन-डर कर दूर
बिनु साहसें सिधि आसन पूर।
बिनु जपले सिधि केओ नहिँ पाव
बिनु गेले घर निधि नहिँ आव।........

बङ्गला ढंग के पदों में शिवसिंह-लखिमा के नाम विशेष नहीं पाये जाते हैं।

बङ्गाली काव्य रसिकगण पन्द्रहवीं शताब्दी से ही विद्यापति के पदों का संचयन एवं संरक्षण करते आये हैं। उस समय से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक बङ्गाली कवि उनके पदों का अनुकरण एवं अनुसरण करते आये हैं। सोलहवीं शताब्दी के कवि ने विद्यापति की भनिता से पदों की भी रचना की है। सत्तरहवीं, अठारहवीं शताब्दी के अनेक कवियों ने भनिता में विद्यापति का नाम देकर अपनी पंगु पदावली को जीवित रखने की चेष्टा की है। किसी किसी कवि रसिक ने तो विद्यापति के मैथिली पदों को पुनः अल्प-विस्तर स्वाधीन भाव से बङ्गला में अनुवाद

१ पृ ३८ (गुप्त ३८; ग्रीयर्सन २५—केवल पहले दो चरणों में समता है)।

किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है। रागतरङ्गिणी में विद्यापति का एक बड़ा पद है—वृन्दावन में वसन्त शोभा वर्णन।[1] यह पद किसी बारहमासा गीति-गुच्छ का प्रथम पद जैसा मालूम पड़ता है। एक पुस्तक में बिद्यापति की भनिता से एक बंगला पद मिला है जो इस सम्भावित बारहमासा पदावली का मर्मानुवाद जैसा लगता है।[2] पद का आरम्भ एवं शेष इस प्रकार है,

माघेते माधव कैले मथुरा गमन
दशदिग शून्य देखि आर वृन्दावन।........
भनये विद्यापति शुन वनवारी
तिलेक धैरज कर मेलिवे मुरारि॥

---

१ पृ ६३–६४। २ वर्द्धमान साहित्य सभा की पोथी ५५४।

विद्यापति अद्यावधि कवि रूप में जो प्रख्यात हैं, वही ख्याति उनके अनेक पूर्ववर्त्ती कवियों को प्राप्त है। उमापति, विद्यापति से प्रायः एक सौ वर्ष पहले के कवि हैं। इनके एकाधिक पदों के भाव विद्यापति के नाम से प्रचलित पदों में विस्तारित एवं तरलित हुए हैं। परवर्त्ती कवियों में अनेक ऐसे शक्तिमान कवि हैं जिन्होंने विद्यापति की तरह अथवा उनकी अपेक्षा अच्छे पद लिखे हैं जो गीतत्रिंशतिका का अंश पढ़ने से मालूम होगा। विद्यापति महान् कवि थे एवं उन्होंने बहुत सारे अच्छे पदों की रचना की है। तब भी, जो विद्यापति पदावली के मत्त मधुकर हैं उनसे मैं केवल इतना ही कहूँगा कि बहु स्थान–काल–पात्र के मधु को केवल एक व्यक्ति द्वारा संचित मानकर वे कल्पना चक्र गढ़ने पर तुल गये हैं। इतिहास चर्चा एवं साहित्य आलोचना को बिल्कुल एक वस्तु के रूप में नहीं स्वीकार करना है। किन्तु इतिहास को सर्वथा अस्वीकार कर साहित्य में आलोचना चल भी नहीं सकती। भावकल्पना के पात्र से विद्यापति पदावली के साहित्य रस को चुलाने से पहले पदों को अच्छी तरह से चुन लेने की आवश्यकता है। इतिहास को ओर दृष्टि फेर लेने से :—

—नेइ ताइ खाच्छ थाकले कोथा पेते
कहेन कवि कालिदास पथे येते येते।—

इन पंक्तियों को मेघदूत–शकुन्तला–रघुवंश के कवि की रचना कहना होगा ।

चौदहवीं–पन्द्रवीं शताब्दी की मैथिली–व्रजबुलि कविता पूर्णतः प्रणय रसात्मक लौकिक गीति है । आदिरसात्मक संस्कृत प्रकीर्ण कविता के भाव इनमें नये आधार पर परिवेशित हुये हैं । भक्तिरस के पदसमूह वन्दना गीति हैं; उनमें साहित्यरस अधिक नहीं है सुतरां यह आलोचना से बाहर की वस्तु है । राधाकृष्ण पदावली में भक्तिभाव के पल्लव का उद्‌गम, श्री चैतन्य के जीवनरस का निषेक पाकर बङ्गाल में हुआ । किन्तु यहां भी प्राचीन आधार की कठिनता एवं कृत्रिमता के कारण वह रस शीघ्र ही सूख गया । तब कुछ परिणाम में, प्रार्थना पदावली में रह गया । किन्तु उसमें साहित्य रस की मात्रा अधिक नहीं है ।

असली बात यह है कि मैथिली-व्रजबुलि गीति कविता में कवियों का अकृत्रिम आत्मप्रकाश एवं आन्तरिकता उतनी कभी भी नहीं थी जितनी हम पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम समय में कबीर की दोहावली में किंवा सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मीरा की पदावली में पाते हैं। विद्यापति राजसभा के पण्डित एवं कवि थे इसीसे उनकी लेखनी दरबारी चाल में चलती है । दरबारी मुहर पाकर ही उनकी पदावली सहज ही कालजयी हुई है । कबीर एवं मीरा के गीतों में पाण्डित्य का प्रकर्ष नहीं, न तो वह दरबारी वस्त्राभूषणों से सज्जित है । तब कवि हृदय के अकृत्रिम भावरस ने उनकी कविता को सार्वजनीनता एवं सर्वकालिकता की जिस उच्चभूमि पर बैठा दिया है, उसे विद्यापति गोष्ठी की मैथिली-व्रजबुलि पदावली कभी भी स्पर्श नहीं कर सकती । मैथिली–बङ्गला–

ब्रजबुलि में विरह के पद तो अनेक हैं, किन्तु विरह की वास्तविक व्याकुलता, रस एवं भाव को विभोर अखण्डता में मीराबाई के इस निराभरण पद का जोड़ कहाँ मिलेगा ?

॥ आनन्द भैरव ॥

सखी मेरी नींद नसानी हो
पियको पन्थ निहारत सिगरी रैन विहानी हो ।ध्रु।
सब सखियन मिलि सीख दइ मन एक न मानी हो
बिनि देख्याँ कल नाहिँ पड़त जिय ऐसी ठानी हो ।
अङ्गि अङ्गि व्याकुल भई मुखि पिय पिय वाणी हो
अन्तर बेदन विरह की वह पीड़ न जानी हो ।
ज्यौँ चातक घन कूँ रटै मछरी विनि पानी हो
मीराँ व्याकुल विरहिणी सुध-वुध विसरानी हो ।

यदि रचना में कवि हृदय की आन्तरिकता है तो भक्तिरस का प्रावल्य साहित्यरस को कभी भी नहीं नष्ट कर सकता है। जैसे माता के साथ मीरा के इस संलाप-पद में,

तु मत गरजे माइड़ी साधाँ दरसन जाती
राम-नाम हिरदे वसै माहिले मद-माती ।
माई कहे-सुन धीहड़ी काहे गुण फूली
लोक सोवै सुख-नीँदड़ी थे क्यूँ रैंनजभुली ।
गेली दुनिया वावली ज्याँ कुँ राम न भावे
ज्यारेँ हिरदे हरि बसे त्याँ कुँ नोँद न आवे ।

चौवाँश्याँ की वावड़ी ज्याँ कुँ नीर न पीजै
हरि-नाले अमृत झरै ज्याँ की आस करीजै।
रुप-सुरङ्ग रामजी मुख निरखत जीजै
मीराँ ध्याकुल विरहिणी अपनी कर लीजै ॥

विद्यापति के कृतित्व को नष्ट अथवा अस्वीकार करने का हमारा उद्देश्य नहीं है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि विद्यापति की कवित्व धारा तत्कालीन सभा–साहित्य के बँधे नहर से प्रवाहित हुई थी। उनकी काव्यकला की चारुता, उनकी गीति कविता की सुर सुरधुनी ने तत्कालीन विदग्ध समाज को मुग्ध एवं परितृप्त किया था एवं वह अभी भी हमारे मन को मुग्ध कर देती है। किन्तु उनकी रचना में भावरस की वह सार्वभौमिकता, वह प्राणशक्ति नहीं है जिससे वह भविष्य में साहित्य-रसिकों के कौतूहल का साधन न होकर जीवन रसिकों का पाथेय होती।

जीवन का स्पर्श ही सच्ची कविता की आत्मा है। इसी के स्पर्श से नितान्त सम्प्रदायगत रचना जो लुइ–कान्ह से प्रारम्भ कर पंजाब के बाबा फरीदुद्दीन, काशी–कोशल के कबीर, राजस्थान की मीरा, बघेल-खण्ड के गेयानदास प्रभुति सन्तभक्त कवियों के भजन-पदावली के माध्यम से निसृत हो बङ्गाल के बाउलों की गीतों में निष्शेषित हुई थी तथा जो रवीन्द्रनाथ के अलौकिक प्रतिभा स्पर्श से नवमंजरित हुई है, उसका हमारे साहित्य के चलती बाजार में मूल्य निर्धारित नहीं किया जा सकता है। रवीन्द्रनाथ यदि मरमिया बाउल गीतिकाव्य के अन्तर-ऐश्वर्य के प्रति हमारी दृष्टि नहीं आकर्षित करते तो आज भी ये वस्तुयें सर्वथा उपेक्षित रह जातीं।

तथापि मैथिली-ब्रजबुलि पदावली आरम्भ से ही सामयिक क्षण-भंगुर-साहित्य नहीं है। इसमें अमरत्व का बीज निहित है। यही कारण है कि प्रारम्भिक तुच्छ रचनाओं के बोझ को छोड़कर केवल ये सभी ही अनेक शताब्दियों की धारा से बहकर आधुनिक काल के घाट पर आ लगे हैं। हमारी यह जिम्मेदारी है कि इन्हें भविष्य के बन्दरगाह तक पहुँचा दें। इसीसे अनावश्यक विषयों का भार हल्का कर इन्हें अनागत काल के रसतीर्थ की ओर अग्रसारित करना ही मेरी इस आलोचना का उद्देश्य है।

गीत त्रिंशतिका

विद्या योगेन रक्ष्यते

मिथिला रिसर्च सोसाइटी

मिथिला रिसर्च सोसाइटी

लहेरियासराय, दरभंगा

Vijaydeo Jha
9470369195
vijaydeojha@gmail.com
Book Source- Dr. Ramdeo Jha

उमापति

१

॥ नट ॥

कि कहब माधव तनिक विसेसे
अपनहु तनु धनि पाव कलेसे।
अपनुक आनन आरसि हेरी
चानक भरम कोप कतबेरी।
भरमहु निअ-कर उरपर आनी
परस-तरस सरसीरुह जानी।
चिकुर-निकर निअ-नयन निहारि
जलधर-जाल जानि हिअ हारी।
अपन वचन पिक-रव अनुमाने
हरि-हरि तेहु परि तेजय पराने।
माधव अवहु करिअ समधाने
सुपुरुष निठुर न रहय निदाने।
सुमति उमापति भन परमाने
माहेसरिदेइ हिन्दूपति जाने॥

२

॥ मालव ॥

हरि–सङ्ग प्रेम आस कर लाओल
पाओल परिभव ठामे
जलधरि छाहरि तर हम सुतलहुँ
आतप भेल परिनामे ।
सखि हे मन जनु करिअ मलाने
अपन करम–फल हम उपभोगव
तोहे किअ तेजह पराने ॥ध्रु०॥
पुरुष-पिरिति-रिति हुनि जओ विसरल
तइओ न हुनकर दोसे
कत न जतन धरि जओ परिपालिअ
साप न मानय पोसे ।
कवहु नेह पुनु नहि परगासिअ
केवल फल अपमाने
वेरि सहस दस अमिअ भिजाविअ
कोमल न होअ पखाने ।
गुरु उमापति पहुदेव परसन
मान होएव अवसाने
सकल नृपति–पति हिन्दूपति जिउ
महारानी–विरमाने ॥

३

॥ विभास ॥

सहस पूर्ण ससि वरओ गगने वसि
निसि वासर देओ नन्दा
भरि वरिसओ विस वहओ दहओ दिस
मलय – समीरन मन्दा
साजनि आब जीवन कोन काजे
पहु मोहि हिन करु अपजस जग भरु
सहय न पारिअ लाजे ॥ध्रु॥
कोकिल अलिकुल कलरवे आकुल
करओ देहओ दुइ काने
सिसिर–सुरभि जत देह दहओ तत
हनओ मदन पँचवाने।
सुकवि उमापति हरि होए परसन
मान होएत समधाने
सकल - नृपति - पति हिन्दूपति जिउ
महेसरि – देइ रमाने ॥

४

॥ मालव ॥

अरुण पुरुष–दिसि बहलि सगरि निसि
गगन मगन भेल चन्दा

मुनि गेलि कुमुदिनि तइओ तोहर धनि
मूनल मुख – अरविन्दा।
कमल वदन कुवलय दुहु लोचन
अधर मधुरि – निरमाने
सगर सरीर कुसुम तुअ सिरिजल
किअ तुअ हृदय पखाने।
असकति करकंकण नहि परिहसि
हृदय हार भेल भारे
गिरिसम गरुअ मान नहि मुञ्चसि
अपरुप तुअ वेवहारे।
अवगुन परिहरि हरखि हेरु धनि।
मानक अवधि विहाने
हिमगिरि–कुमरी–चरण हृदय धरि
सुमति उमापति भाने॥

विद्यापति

५

॥ विहागड़ा–केदार ॥

उधसल केस कुसुम छिरिआएल खन्डित दसन अधरे
नयन देखिअ जनि अरुण कमलदल मधु लोभे बैसल भमरे।

कलावति कैतव न करह आज
कञोन नागर-सङ्ग रयनि गमञोलह कह मोहि परिहरि लाज ।ध्रु।
पीन पयोधर नखरे सुन्दर करेँ बाँधह काँ गोरि
मेरु-शिखर नव उगि गेल ससधर गुपुति न रहलि ए चोरि।
बेकते ओो चोरि गुपुत कर कतिखन विद्यापति कवि भान
महलम जुगपति चिरेँ जीवेँ जीबथु ग्यासदीन सुरतान ॥

६

॥ माधवी-वराड़ी ॥

ससन-परसेँ खसु अम्बर रे देखल धनि-देह
नव जलधर-तर चमकए रे जनि बीजुरि-रेह।
आज देखति धनि जाइतेँ रे मोहि उपजल रङ्ग
कनकलता जनि सञ्चर रे मही निरअवलम्ब।
ता पुनु अपरुव देखल रे कुचयुग-अरविन्द
विगसित नहिँ किछु कारण रे सोझाँ मुखचन्द।
विद्यापति कवि गाओल रे बूझए रसमन्त
देवसिंह नृप नागर रे हाँसिनी देवि-कन्त ॥

७

॥ करुणा-सुहव ॥

कुल गुण गौरव शील सोभाओ
सबे लए चढ़लिहु तोहरहिँ नाओ।

हमे अबला कत कहब अनेक
आइति पड़लाँ बुझि अविवेक
हठ तेज माधव कर मोहि पार
सबतहुँ बड़ थिक पर-उपकार।
हमरा भेलि आबे तोहरि आस
से न करिअ जे हो उपहास।
तोहें परपुरुष हमहु पर नारी
हृदय काँप तुअ रीति विचारि।
भल-मन्द जानि करिअ परिणाम
जस-अपजस पए रह गए ठाम।
भनइ विद्यापति तों हें गुणमान
हाथि-महतें नर के नहिँ जान॥

८

॥ द्राविड़ी ॥

जौवन रूप अछल दिन चारि
से देखि आदर कएल मुरारि।
अब भेल झाल कुसुम सवे छूछ
वारि विहुन सर केओ नहि पूछ।
हमरि ओ विनति कहब सखि रोए
सुपुरुख-वचन असफल नहि होए।
जावे रहए धन अपना हाथ
तावे से आदर कर संग-साथ।

धनिकक आदर सबतहु होए
निरधन बापुर पुछ नहि कोए।
भनइ विद्यापति राखब सील
जञो जग जीविअ नवो निधि मील ॥

९

॥ श्री धनछी ॥

मलिन कुसुम तनु चीरे
कर पर वदन नयन ढरु नीरे।
कि कहब माधब ताही
तुअ गुण-लुबधि मुगुधि भेलि राही।
उरँ लुर सामरि वेणी
कमलकोष जनि कारिनागिनीं।
केअओ सखि ताकए साँसे
केओअ नलिनीदलेँ करए बतासे।
केअओ बोल आएल हरि
उससि उठलि सुनि नाम तोहरी।
सुकवि विद्यापति गावे
विरहिणी वेदन सखि समुझावे ॥

१०

॥ शङ्कक नाग ॥

करतल कमलनयन ढर नीर
न चेतए कुन्तल सँभर न चीर।

तुअ पथ हेरि हेरि चित नहि थीर
सुमुरि पुरुव–नेहा दगध–सरीर।
कते परि माधव साधब मान
विरहि जुवति माग दरसन दान।
जल–मधे कमल गगन मधे सूर
आँतर चाँदहु कुमुद कत दूर।
गगन गरज मेघा सिखर मयूर
कत जन जान सिनेह कत दूर।
भनइ विद्यापति विपरीत मान
राधा वचने लजाएल कान्ह॥

११

॥ काम–सुहव ॥

वदन चाँद तोर नयन चकोर मोर
रूप–अमिअ–रस पीबे
अधर मधुरि–फुल पिअ मधुकर तुल
मधु बिनु कतिखन जीबे।
हे मानिनि मन तोर गढ़ल पसाने
अपने रभसें हसि किछुओ उतर देखि
सुखे जाओं निसि अवसाने।
निअ मने न गुनसि पर बोल न सुनसि
न [बुझसि] छइलरि वाणी

अपन अपन कजा कहितें परम लजा
अरथित आदर हानी।
भनइ विद्यापति सुनु वर-जौवति
सबे-खन न करिअ माने।
राजा शिवसिंह रूपनराएन
लखिमा देवी - रमाने॥

१२

॥ उत्तम-नाट ॥

सखि हे बालँभ जितब विदेसे
हमे कुलकामिनी कहइते अनुचित
तोहहुँ देहुहिँ उपदेशे।
ई न विदेशक बेला
दुरजनें हमर दुख न अनुमापव
तें तोहें पिआ गेल एली।
किछु दिन करथु निवासे
हमे पूजल ये सेहे पए भूजव
राखथु पर उपहासे।
होए ताहे किए वध-भागी
जाहखने हुन्हि मने माधव चिन्तब
हमहु मरब धसि आगी।
विद्यापति कवि भाने

राजा शिवसिंह रूपनराएन
लखिमा देवी–रमाने ॥

१३

॥ योगिया–आसावरी ॥

कालि कहल पिआजे साँझहि रे जाएब मोजे मारुअ देश
कोजे अभागलि नहि जानल रे सगँहि जेतहु सेइ देश।
हृदय बड़ दारुण रे पिआ बिनु विहरि न जाइ।ध्रु।
एकहि सयन सखि सूतल रे अछल बालँभ निसि भोर
न जानल कतिखन तेजि गेल रे बिछुरल चकेवा–जोर।
सुन सेज हिअ सालए रे पिआजे बिनु मरब मोजे आजि
विनति करओं सखि लोलनि रे मोहि देहे अगिहर साजि।
विद्यापति कवि गाओल रे आए मिलत पिअ तोर
लखिमा देइ–वरनागर रे शिवसिंह नहिँ भोर ॥

१४

॥ विहासी ॥

कुसुमरस अति मुदित मधुकर कोकिल पञ्चम गाव
ऋतु बसन्त दिगन्त वालभ मानस दहो दिश धाव।
सजनिआ, तेजल तेल तमोल तापन सपन निसि सुखरङ्ग
हेमन्त विरह अनन्त पाविअ सुलरि मुमरि पिआ सङ्ग।
मोर दादुर सोर अहोनिशि बरिस बुँद सदन्द
विषम बारिस बिना रघुवर बिरहिनि–जीवन अन्त।

सुमुखि धैरजें सकल सिाध मिल सुनह कन्त–सुवाणी
शिशिर शुभदिन राम रघुवर आओव तुअ गुण जानि ॥

१५

॥ देव-राज विजय ॥

कतहु श्मश्रुधर कतहु पयोधर
भल वर मिलल सुशोभे
अधँग धइलि नारी [न] गुनलि निजगारि
गरुअ गौरी–गुन लोभे।

आलो शिव शम्भु तुमि शिव शम्भु
तुमि जे बधलो पँचवाणे ।ध्रु।

गाँग – लागि गिरि– जाक मनौलि हे
कके देवि बोलह मन्दा
चरण – नमित फणी मणिमय भूषण
घर खिखिआएल चन्दा।

भनइ विद्यापति सुनह तिलोचन
पय-पङ्कज मोरि सेवा
चन्दलदेइ - पति वैद्यनाथ गति
नीलकन्ठ हर देवा ॥

"कवि–कन्ठहार"

१६

॥ अनूपा–शारङ्गी ॥

तोरए मोजे गेलिहुँ फूल
मोती मानिके तूल ।

साजनि, साजी अछोरसि मोरि
गरुवि आरति तोरि
डिठि देखइतेँ दिवस चोरि ॥

एत कन्हाइ परधन लोभ
जे नहि लुबुध सेहे पए सोभ ॥ध्रु०॥

निकुञ्ज – केर समाज
इथिँ नही मुख – लाज ।

ढाँकिवो जेन अपजस-रासि
से करे कान्हु जेन लजासि
जखने नागर नगर जासि ॥

पीन – पयोधर – भार
मदन – राए – भाण्डार ।
रतने जड़िलो ताहरि माथ
मलिन होए तन देहे हाथ
बड़ से कठिन हमर चाथ ॥

कवि भन कन्ठहार
रस एतए के पार ।
सिरि-शिवसिंह जानए तन्त
रतन सन लखिमा कन्त
सब कलारस जें गुनमन्त ॥

"दश-अवधान"

१७

॥ वितता-भीमपलासी ॥

उपरे पयोधर नखरेख सुन्दर
मृदमद-पङ्के लेपला
जनि सुमेरु ससिखरड उदित भेल
जलधर-जालें झाँपला ।
अभिरानि हे कपट करह काँ लागी
कोन पुरुष-गुणे लुबुध तोहर मने
रयनि गमओलह जागी ।
कारनें कओने अधर भेल धूसर
पुनु कोंनें आरत देला
दूधक परसें पवार धवल भेल
अरुन मजिठ भए गेला ।

नवि पनारि गजें गञ्जि नड़ाउलि
परसलि सूर – किरणे
ऐसन देखिय कपट करह जनु
वेकत नुकाओब कओने ।
दस-अवधान भन पुरुष-पेम गुनि
प्रथम समागम भेला
आलमसाह प्रभु भाविनि भजि रहु
कमलिनि भमर भूलला ॥

भवानीनाथ

१८

सुन्दर–सुहव ॥

नाव डोलाव अहीरे
जिवइतें न पाओब तीरे
खर नीरे लो ।
खेव न लेअए मोले
हँसि हँसि की दहु बोले
जीव डोले लो ।
किके बिके ऐलिहुँ आपे
वेढ़लहुँ मोहि बड़े सापे
मोरे पापें लो ।

करितहुँ पर उपहासे
परलिहु तन्हि विधि-फाँसे
नहि आसे लो।

न बुझसि अबुझ गोआरी
भजि रहु देव मुरारि
नहि गारी लो।

भवानीनाथ हेन भाने
नृप देव जत रस जाने
नव कान्हे लो॥

देवसिंह ?

गोविन्ददास

११

॥ मङ्गली धनछी ॥

अगर उगारि गारि मृगमद – रस
कए अनुलेपन देह
चलिलि तिमिर मिलि निमिषेँ अलख भेलि
काच-कसनि मसि रेह।

हे माधव, हेरह हरखि धनि चान उगल जनि
महि-तलेँ मेटि कलङ्क

घर गुरुजन हेरि पलटति कत बेरि
ससिमुखि परम ससङ्क।
तुअ गुणगण कहि आँनलि असाहि टारि
दैए सुमुखि विसवास
तेँ परि पराइअ जेँ पुनु पाविअ
पर-धन बिनु परयास।
जपल जनम सत मदन - महामत
विहि सुफलित करु आज
दास गोविन्द भन कंसनराएन
सोरमदेवि - समाज॥

यशोधर

२०

॥ धनछी—मालव ॥

तोँहँ हँम पेम जतेँ दुरेँ उपजल
सुमरवि से परिपाटी
आवे पर-रमनि-रङ्गवस भुलला हे
कओन कला हमेँ घाटी।

भमर-वर, मोरे बोले बोलव कन्हाइ
विरह-तन्तु जदि जान मनोभव
की फल अधिक जनाइ।
सुनिअ सुमेरु साधुजन - तुलना
सब काँ महिमा धने
तनि निज लोभेँ ठाम जदि छाड़ब
गरिमा गहवि कओँने।
पुरुष—हृदय जल दुअओ सहजेँ चल
अनुवधेँ बाधेँ थिराह
से जदि न थिवरह सहसेँ धारे बह
उचे ओ नीच पथे जाइ।
भनइ जसोधर नव - कविशेखर
पुहबी तेसर काँहाँ
साह हुसेन भृङ्ग—सम नागर
मालति-सेनिक ताँहाँ॥

"कविशेखर"

२१

॥ देशीय-बराड़ी ॥

आनन लोनुअ वचने बोलए हँसि

अमिअ बरसि जनि सरद-पुनिमा-ससि
अपरुव रूप-रमनिआँ
जाइते देखलि गजराज-गमनिआँ ।ध्रु०।
काजरैं रञ्जित धवल नयनवर
भमर मिलल जनि अरुण कमलदल ।
भान भेल मोहि माँझ खीनि धनि
कुच सिरिफल-भरैं भाँगि जाति जनि ।
कवि शेखर भन अपरुव रूप देखि
राए नसरद साह भजलि कमलमुखी ॥

भीष्म

२२

॥ पर्वतीय-वराड़ी ॥

ससधर सहस सार बटुराव
तैअओ न वदन पटन्तर पाव ।
देख देख आइ
सरगक सरवस उरवसि जाइ ।ध्रु।
विविध विलोकन अति अभिराम
मनहु न अवतर नयन उपाम ।

निक निक मानिक अरुनिम ज्योति
सहजे धवल देखिअ गजमोति।
आतर रात मजलेँ अति सेत
ऐसन दसन तुलना के देत।
काञ्चिक अरचि[1] रोमावलि भास
उपरँ तरल हरावली फाँस।
कर कौशल मनमथ मन लाए
कुच सिरिफल नहि होअए नवाए।
करिवर उरु उपमा नहि पाव
अपनहि लाजेँ सङ्कोचि नुकाव॥
हरिहर प्रनमिए[2] भीषम भान
प्रभावति–पति जगनरायन जान॥

२३

॥ मलारी–केदार ॥

कीर कुटिलमुख [न बुझ वेदन दुख
बोल वचन परमाने]
विरह–वेदनेँ दह कोकक करुण सह
सरुप कहत के आने।
हरि हरि मोरि उरवसि की भेली

१. पाठ 'रुचि'। २. पाठ "प्रणयिए"।

जोहइत धावजों कतहु न पाश्रजों
मुरछि खसजों कत बेरी ।ध्रु।
गिरि–नदि–तरुश्रर कोकिल भमरवर
हरिण हाथि हिमधामा
सवक परजों पैआँ सबे भेल निरदए
केश्रश्रो न कहए तसु नामा ।
मधुर मधुर धुनि नेपुर – रव सुनि
भमजों तरङ्गिनि – तीरे
मोरें करमें कल–हंश्र नाद भेल
नयन विमुश्रजों नीरे ।
हरि [हर नति करि करए][1] साखि धरि
कवि भीष्म एहो भाने
प्रभावतिदेइ – पति मोरङ्ग – महीपति
नृप जगनराएन जाने ॥

गजसिंह

२४

॥ करुणा–मालव ॥

युगल–शैल सिंम हिमकर देखल
एक कमल दुइ ज्योति रे

---

१. कोष्टक के भीतर की योजना आनुमानिक है ।

फुलल मधुरि-फुल सिन्दुरे लोटाएल
पाँति बैसलि गजमोति रे।
आज देखल जत के पतिआएत
अपरुब बिहि निरमान रे
विपरित कनक-कदलि-तरैं शोभित
थल पङ्कज-के रूप रे।
गजसिंह भन एहु पुख - पुन तह
ऐसनि भजए रसमन्त रे
बुझए सकल रस नृप पुरुषोत्तम
असमति देइ-केर कन्त रे

"कवि"-रतनाओ

२५

॥ भोगिनी-आसावरी

कनकलता अरविन्दा
मदनाँ माँजरि उगि गेल छन्दा।
केओ बोल भमय भमरा
केओ बोल नहिँ नहिँ चलय चकोरा।
केओ बोल सैवालें बेढ़ला
केओ बोल नहिँ नहिँ मेघ मिलला।

संशए परु जन मही
बोल तोर मुख सम नहीं।
कवि रतनाजी भानें
सङ्क कलङ्क दुअओ असमाने।
मिलु रति मदन-समाजा
देवल देवी लखनचन्द राजा॥

जीवनाथ

२६

॥ मनमोद-राजविजय ॥

सखि मधुरिपु सन के कतए सोहाओन
जे दिअ तन्हिक उपाम हे
तसु मन नेओछन सरद - सुधानिधि
पङ्कज के लेत नाम हे।
सखि आज मधुरिपु देखला मोहि हटिआ
लोचन जुगल जुड़ाएला।ध्रु०।
अध बाँहि लोचने जखनें निहारलन्हि
बाँक कइए भौँह - भङ्गा
तखनुक अवसर जागल पँचसर
थानें थानें गेल अङ्गा।

दरसन-लोभे पसार देल हमे
सखि मुखे सुनि बड़ रसी
तखन उपजु रस भेलिहुँ परबस
बिसरलि दुधहुँ कलसी।

दानकल्पतरु मेदिनि अवतरु
नृप हिन्दू सुलताने
मेधादेइ - पति रूपनराएन
प्रणवि जीवनाथ माने ॥

धरणीधर

२७

॥ मोरङ्गिआ-कोड़ार ॥

रितुराज आज विराजे हे सखि नागरी-गण-वन्दिते
नवरङ्ग नवदल देखि उपवन सहज सोभित कुसुमिते।

आरे कुसुमित कानन कोकिल-साद
मनिहुँक मानस उपजु विषाद ॥

साजनि हम पति निरदय वसन्त
दारुण मदन निकारुण कन्त ॥ध्रु॥

अतिमत्त मधुकर मधुर रव कर मालती मधुसञ्चिते
समजे कन्त-उदन्त नहि किछु हमहि विधि-वस-वञ्चिते ॥
वञ्चित नागरी सेहे संसार
एहि रितु पहु सञो न करु विहार ॥
अति हाव-भाव मनोज मारए चन्द रवि ससि भानए
पुरुव-पाप सन्ताप जत होअ मन मनोभव जानए ।
जारए मनसिज मान सर-साँधि
चाँदमें देह चौगुण होअ धाधि ॥
सबे धाधि आधि बेआधि जाइति करिअ धैरज कामिनी
सुपहु मन्दिर तोरित जाएत सुफले जाइति जामिनी ।
जामिनी सुफले जाइति अवसान
धैरज कर धरणीधर भाँन ॥

श्याम सुन्दर

२८

॥ शङ्कु-नाट ॥

दूरहि ऊरु रहल गहि ठाम
चरणे पाओल थल कमल उपाम ।
सेद - विन्दु परिपूरल देह
मोतिम फरलि सौदामिनि रेह ।

संकेत निकेत मुरारि निहारि
अपनि अधिनि नहि रहलि ए नारि।
पुलकित भेल पयोधर गोर
दगध मदन पुनु ञाकुर तोर।
बजइतेँ वचन भेल सर-भङ्ग
कदलीदल जकेँ काँपए अङ्ग।
रसमय श्यामसुन्दर कवि गाब
सकल अधिक भेल मनमथ-भाव।
कृष्णनराएण ई रस जान
कमलावति-पति गुनक निधान॥

वंशमणि

२९

आध मौलि-मन्डन फुलमाले
आध तरङ्गित सुरसरि-धारे।
आध भालक तिलक नव-इन्दु
आध सोहाञो सिन्दुर-विन्दु।
कोमल विकट चरण दुहु चारी
अपरुव नाच करथि तिपुरारि।

एक देह अध पूरुष-दारा
तेतिस कोटि देव देख निहारा।
सुकवि वंशमणि एसु रस गावे
सेवि देव हर की नहि पावे।

लोचन

३०

॥ राघवीय-वराड़ी ॥

आनन्द कन्दा
पुनिमक-चन्दा
सुमुखि-वदन तह मन्दा।
अधरे मधुरी
सामरि सुन्दरीं
बिहसि जिनए सित कुसुमसिरी।
पथ मिललि धनी
दामिनी सनि
ब्रजराज-जनी।ध्रु०।
चिकुर चामरा
मुदिर सामरा

नलिन नयन सुखकरा।
काम रमनी
जंहिनि तँहिनी
दसन चमक जनि हीर कनी।
उकुति वेकती
बुझलि जुगुती
कामिनी मनवति पती
हरि अभिमानी
मनए अनुमानी
मिलए चललि रसे रास-वनी।
बिजुरि उजरी
रजनि गुजरी
दूति दोसरि अगुसरी।
लोचन – वाणी
सुतनु सयानी
कन्त भजलि गजराज-गनी॥

दीपिका

१

यह एवं नीचे के तीनों पद उमापति-ओझा रचित परिजातहरण नाटक से लिये गये हैं।

२

चानकचन्द्रमा के। सुमति = सुमन्त्री। तर = नीचे। हुनकर = उनका।

३

पद का भाव परवर्त्तीकाल मे विद्यापति एवं दूसरों की भनिताओं से एकाधिक पदों में व्यवहृत हुआ है।

सहस = सहास्य। साजनि = भले घर की स्त्री, सखी।

४

यह पद राजकृष्ण मुखोपाध्याय को विद्यापति की भनिता से प्राप्त हुआ था। इसीसे यह विद्यापति के नाम से ही प्रचलित है।

बहलि = बह गयी, बीत गयी। सगरि = सारी। मुनिगेल = सिकुड़ गयी। मूनल = मुँदा हुआ।

५—२८

रागतरंगिणी से उद्धृत।

५

यह पद शृंङ्गारस की साधारण कविता है। कृष्णलीला के साथ इसका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। तुलनीय,

ध्वस्तं केन विलेपनं कुचयुगे केनाञ्जनं नेत्रयो
राग: केन तवाधरे प्रमथित: केशेषु केन स्रज: ।....

—कवीन्द्रवचनसमुच्चय ।

नवनखपदमङ्गं गोपयस्यंशुकेन
स्थगयसि पुनरोष्ठं पाणिना दन्तदष्टम ।
प्रतिदिशमपरस्त्रीमङ्ग शंसी विसर्पन्
नवपरिमलगन्ध: केन शक्यो वरीतुम् ।।

—माघ ।

६

शृंङ्गार रस की साधारण कविता । ससन = श्वसन, वायु । तर = नीचे ।

७

राधाकृष्ण का नौका-विलास विषयक पद ।
सोभाओ = स्वभाव । आइति = अधीन । भेलि = हुई । आवे = अभी ।

८

धनिकक = धनियों का । बापुर = कंगाल । राखव = रखियेगा ।

९

तुलनीय, कंचन रेहा मन्दिरमज्झे
पेक्खह बाला लिहइ भूअंङ्गं ।
नहि नहि वल्लह एहुत्थ भुअंगो
दुज्झह उभरल वेणि विभंगं ।।

—आनन्दधर ।

लूर = लोटती है। छन्द के अनुरोध से केअओ की जगह "केओ" पढ़ा जायगा। ताकए = देखती है। उससि = उच्छसित होकर।

१०

तुलनीय,

गिरौ कलापी गगने पयोदा
लक्षान्तरे भानु रथाप्सु पद्मम्।
द्विलक्षदूरे कुमुदस्य बन्धु—
र्यो यस्य मित्रं न हि तस्य दूरम्॥

११

पद की भाषा एवं छन्द पर बंगला का प्रभाव पूर्ण परिलक्षित होता है। यह पद किसी बंगला पद का रूपान्तर जान पड़ता है।

छइलरि वाणी = रस की कथा। कजा = कार्य क्रम। अरथित = अर्थित।

१२

बालँभ = बल्लभ, प्रिय। जितब = जाँयगें। तोहन्हुँ = तुम! देहुन्हि = दो, कहो। एली = छोड़कर। हुन्हिँ = उन्हें।

१३

यह पद कृष्णलीला का नहीं है। प्रवासी शिवसिंह को उपलक्ष्य कर लखिमादेवी को सान्त्वना देने का संकेत अन्तिम चरण में है—शिवसिंह, लखिमादेवी के प्रिय हैं, वे आकर मिलना नहीं भूलेगें।

मारुअ = मालव अथवा मरु; सम्भवतः ढोला-मारुर अथवा माधवा-नन्द-कामकन्दला की कहानी के अनुसार। अभागलि = अभागिनी। जैतहु = जाती। बिहरि = फट जाना, विदीर्ण होना। बिछुड़ल = विलग हो गया। चकेबा-जोर = चकबे का जोड़ा। सालए = पीड़ा देती है।

लोलिनि = सखी का नाम। मोहि = मुझे। देहे = दो। अगिहर = अग्निगृह, जौहर। आए मिलत = आकर मिलेंगे।

१४

सीता का बारहमासा विरह वर्णन। पद खण्डित है। हर महीने अथवा ऋतुओं का वर्णन नहीं है। समय का पौर्वापर्य भी ठीक नहीं है। लोचन ने इस पद को विद्यापति का कहा है। विद्यापति की रचना न भी हो, ऐसा हो सकता है। दूसरे चरण के साथ प्राकृत पैंगलम की एक कविता का यह चरण तुलनीय है, दिसइ बलइ हिअअ दुलइ हमि एकलि बहू।

बालभ = बल्लभ। तमोल = पान। तापन = अग्निसेवन। बूंद = वृष्टि विन्दु।

१५

रसवेशी अर्धनारीश्वर शिव की व्याजस्तुति। ध्रुवपद तक का अंश मेनका अथवा गौरी की सखी की उक्ति है। उसके बाद शिव का उत्तर है। एक और पद मे (गुप्त "हरगौरी" ११) "चन्दन देवीपति बैजल देवा" का उल्लेख है।

अधँग = आधे अंग में। धइलि = रखें हैं। गारि = घर की अवस्था। गाँग = गङ्गा। मनौलिहें = मना लिया। जान पड़ता है कि ठीक पाठ इस प्रकार होगा—"गिरिजाक लागि गाँग मनोलिहे"। कके = किसके लिये। खिखिआएल = उद्भासित हुआ है। चन्दल = अपना नाम हो सकता है; पितृवंश का भी नाम ("चन्देल") हो सकता है।

१६

पद में छन्द वैचित्र्य है। बंगला का प्रभाव विशेष रूप में है। कवि क्या मिथिला प्रवासी बंगाली अथवा बंगाल-तिरहुत सीमान्त के अधिवासी थे? प्रसंग यह है कि सखियों के साथ राधा वृन्दावन में फूल चुनने गयी है तथा माली कृष्ण आकर भर्त्सना करते हैं।

तोरए=तोड़ने, चुनने। अछोरसि=छोड़ो। गरुवि=विशेष। डिठि=दृष्टि। देखाइतेँ=देखकर। लाथ (मुद्रित पाठ नाथ)= छलना।

१७

भनिता मे आलमसाह यदि आजम-शाह का अशुद्ध पाठ हो तो यहाँ भी "ग्यासदीन" सुलतान का उल्लेख पाते हैं।

अभिरानि=आभीरिणी। आरत=आलता, रक्तराग। पवार= प्रवाल। नवि=नया। पनारि=पद्मनालिका, पद्मिनी। कञोने=कौन।

१८

नौका विलास का पद। छन्दमे पूर्ण वैचित्र्य है। डोलाव=डुलाता है। अहीरे=अधीर भाव से। खेव=खेवा। मोले=मूल्य। दहु=दो। किके=क्यों। ऐलिहुँ=आयी। वढ़े सापे=बड़ा साँप। नहि गारि= गाली अथवा कलंक नहीं होगा। कान्हे (छन्द के लिये "कांने" पढ़ा जायगा)=कृष्ण।

१९

राधा के तिमिराभिसार का वर्णन। आगर=अगुरु। उगार= उद्गार। गारि=निचोड़ कर। काच-कसनि=पारस पत्थर। चास=

चाँद । मेटि=मिटाकर । असाहि=असाध्य । टारिढेलकर=जोर कर । दैए=दिया । पराइअ=धन्य । परयास=प्रयास । महामत=महामंत्र ।

२०

भ्रमरदूत का पद । प्रवासी कृष्ण के प्रति राधा की उक्ति । आवे=अभी । घाटी=कम । अनुबधें=अनुबन्ध से । बाँधें=बाँध दिया । थिराह=स्थिर हुआ । सहसें धारें=सहस्र धार से । तुलनीय, "त्वं चेत् नीचपथेन गच्छसि पयः कस्त्वां निषेद्धुं क्षमः" । पुहवी= पृथ्वी पर । तेसर=तृतीय व्यक्ति । सेनिक=श्रेणी का ।

२१

साधारण तरुणी नायिका का वर्णन । यह पद नरहरि चक्रवर्त्ती के गीत चिन्तामणि में भी है । पद कल्पतरु मे यह विद्यापति की भनिता से है तथा इसका पाठ विकृत है । इसी विकृत पाठ को नगेन्द्रनाथ गुप्त ने लिया है । लानुञ=लावण्यमय । भान=भ्रम ।

२२–२३

कवि भीष्म के ये दोनों पद उर्वशी की कहानी पर आधारित किसी नाट्यगीति के हैं, ऐसा जान पड़ता है ।

२२

सहस=सहस्र । बटुबार=बटोर कर अथवा संचय करके । पटन्तर=तुलना । निक=सुन्दर । ञातर=अन्तर । रात=रक्त, लाल । मजलें=मार्जित । अरचि=पूजा करके । प्रणमिए (पाठ प्रणयिए)=प्रणाम करता है ।

२३

कोकक = चकबे का। जो हइत = जिसके लिये। कतहु = कहीं। परञों = पड़ना। पैञाँ = पैर।

२५

संदेहालंकार की सहायता मे तरुणी का रूप वर्णन। पद का एक पाठान्तर नगेन्द्रनाथ गुप्त ने विद्यापति की भनिता से उद्धृत किया है (१७)।

मदना माँजरि = मदन वृक्ष अथवा काम मंजरी। परु = पड़ते हैं। बोल = बोलता है।

२६

राधा का पूर्वराग वर्णन। सोहाञोन = शोभामय वस्तु। अध (पाठ "अधर") = अर्द्ध। बाँहि = बाँया। बाँक कइए = कटाक्ष कर।

२७

पद गठन मे छन्द-वैचित्र्य है। पद के प्रथमार्द्ध की अंतिम अंश को दुहराकर उत्तरार्द्ध का प्रारम्भ हुआ है।

साद = शब्द। जारए = जलाता है। सर-साँधि (पाठ "साधि") = शर सन्धान कर। धाधि = दग्ध।

विद्यापति की दो अवहट्ठ कवितायें

१

चलिअ तकतान सुरतान इवराहिमो
कुरुम भन धरणी सुन वहन-बल नाहिमो।
गिरि टरइ महि पडइ नाग-मन कम्पिआ
तरणि-रथ गगन-पथधूलि-भरे झम्पिया।
तवल सत बाज कत भेरि भरे फुक्किया
पलअ-घन बज्ज-सम इअर-वल लुक्किया।
तुलुक लख हरखें हख अग्गि धस फालहीँ
मारधर मारि कर कट्टि कर बालहीँ।
मअगलइ पअ पलइ भोगि चलइ जंखने
सत्तु घर उपजु डर निन्द नहि झंखने
खग्ग लइ गब्ब कइ तुलुक जवँ जुज्झइ
अपि सगर सुर नगर संक पल मुज्झइ।
सोखि जल किअउ थल पक्खि-पअ-भारही
जानि-धुअ संक लुअ सअल-संसारहीँ।
केलि करि बाँधि धरि चरणतल अप्पिआ
केलि पर नेमि कर अप्पु-करे थप्पिआ।
चौ-साअर अन्तर दीग दिगन्तर पातिसाह दिगविजय मभ
दुग्गम गाहन्ते कर चाहन्ते बेवि सन्थ संपलइ जम॥

२

अनल-रन्ध्र-कर लक्खण-नरवइ सक्क समुद्द-कर अगिनि ससी
चइति कारि छठि जेठा मिलिओ बेहप्पइ जाउँ[1] लसी।
देवसिह जउँ पुहवी छड्डइ अद्धासन सुरराअ सरु
दुहु सुरतान निदइ अव सोअउ तपनहीन जग तिमिरे भरु।
देखहु ओ पुहवीके[2] राजा पौरुष-माँझ पुन्न-बलिओ
सत-बलइ गंगा मिलित कलेवर देवसिंह सुरपुर चलिओ।
एक दिस जवन सकल बल चलिओ एकदिस जमराअ चरु
दुहुए दलटि मनोरथ पूरओ गरुए दाप सिवसिंह करु।
सुरतरु कुसुम घालिदिस पूरेओ दुन्दुहि सुन्दर साद धरु
वीरछत्र देखनको कारण सुरगण-सोभैँ गगन भरु।
आरम्भिअ अन्तेट्ठि महामख राजसूअ अस[3]मेध जहाँ
पण्डित घर आचार बखानिअ याचककाँ घर दान कहाँ।
विज्जावइ कविवर एहू गाबए मानव मन आनन्द भओ
सिंहासन शिवसिंह बइट्ठओ उछबइ बइरस विसरि गओ॥

१. पाठ 'जाउ'। २. पाठ "पृथिमीके"। ३. पाठ "अश्वमेध"।

द्रष्टव्य

[असावधानी से पृ० ४८ पर, पंक्ति १४ के बाद का निम्न अंश छपने से छूट गया है। पाठकों से साग्रह निवेदन है वे इस त्रुटि का संशोधन कर पढ़ें।]

भवतः श्री रामदास हृदयनन्दस्य परम राज कवेरार्यऽश्री वाल सरस्वती प्रथित कीर्तिमण्डलस्य श्री मतो धर्मगुप्तस्य अभिनवकृतं चतुरंक-रामायण नाटकम्'' रचित एवं अभिनीत हुआ था। बहुतों का अनुमान है कि यह नाटक और रामाङ्क नाटक, एक ही पुस्तक है। ऐसा नहीं कहकर कवि इसे "अभिनवकृत" कहते हैं। उपाधियों की घटा देखते हुए स्वतन्त्र रीति से यह अनुमान किया जा सकता है कि रामायण - नाटक की रचना उन्होंने प्रौढ़ावस्था मे की होगी।

धर्मगुप्त, बंगाली थे, इसका निश्चित प्रमाण कवि के पुत्र रामगुप्त द्वारा प्रतिलिपि की गयी महाभारत की पोथी से उपलब्ध होता है।[१] महा प्रस्थान-पर्व की इस पुस्तक की प्रतिलिपि रामदास ने बंगलाक्षर में, नेपाल संवत ५४५ (=१४२५) में "महापात्र श्री राजसिंहदेव : महामात्य श्री नाथसिंह : एतयोः शिरोमृत प्रस्ताव क्षणे" की थी। राजसिंह एवं श्री नाथसिंह भी निश्चय ही बंगाली थे। यदि वे सो नहीं रहते तो फिर बंगलाक्षर में पुस्तक नहीं लिखवाते।

---

१. नेपाल दरवार की पोथी।

पुस्तक के अन्त मे लिपिकार ने आत्मपरिचय के साथ-साथ अपने आश्रयदाता को आशीर्वाद देते कहा है,

सद्रामदास कविनन्दनो यः
सो बालवागीश्वर धर्मगुप्तः।
तस्यानुजः पण्डित राजगुप्तो —
भ्राता सुतश्चास्ति च राजगुप्तः। म
एतत् व्याख्यान कथितुमुभयानाम शिष्टम्।
तेनत्वरया लिखितं न दोषधियस्त्र बुधै ः॥

सुखी भवन्तु श्री सप्त कुटुम्ब श्री (उ) भय महामात्राणाम्। ज

वालवागीश्वर के पुत्र एवं पण्डित राजगुप्त के भ्रातृष्पुत्र होने से ही क्या होता है, रामगुप्त का संस्कृत ज्ञान, परिचय देने का विषय नहीं था। पुष्पिका के अन्तिम तीन चरणों की भाषा को तो वौद्ध संस्कृत कहना ही उपयुक्त होगा।

सङ्केत

इ = इन्डिया आफिस की पुस्तक।

ग = इन्डिया गवर्नमेन्ट की पुस्तक।

मित्र = राजेन्द्रलाल मित्र का विवरण।

विद्या योगेन रक्ष्यते

मिथिला रिसर्च सोसाइटी

मिथिला रिसर्च सोसाइटी

लहेरियासराय, दरभंगा

Vijaydeo Jha
9470369195
vijaydeojha@gmail.com

Book Source- Dr. Ramdeo Jha